Bihar Naman GS
An Institute for UPSC & BPSC

RED BOOK OF BIHAR

www.biharnaman.in

70th BPSC

बिहार की कला एवं संस्कृति

PRELIMS SUBJECTIVE NOTES

Bihar Naman GS
3rd floor, A.K. Pandey Building, Road No.-2, Rajendra Nagar, Patna - 800016
8368040065 | 9279002009

बिहार की कला एवं संस्कृति

अध्याय
3

कला एवं संस्कृति का परिचय

कला: मानवीय भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति को कला कहते है। किसी भी क्षेत्र विशेष की पहचान न केवल वहां के धर्म, दर्शन आदि से होता है बल्कि वहाँ की कलात्मक विरासत का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है। विभिन्न विद्वानों ने भी 'कला' को अपने अनुसार परिभाषित किया है-

- ❖ **रवीन्द्रनाथ टैगोर**- सत्यम, शिवम, सुन्दरम की अभिकल्पना ही कला है।
- ❖ **प्लेटो**- कला, सत्य की अनुकृति की अनुकृति हैं
- ❖ **अरस्तू**- कला प्रकृति के सौन्दर्यमय अनुभवों का अनुकरण है।
- ❖ **मैथिलीशरण गुप्त**- अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति कला है।
- ❖ **स्पिनोजा**- कला भावनाओं की पवित्र अभिव्यक्ति है।
- ❖ **पार्कर**- इच्छा का काल्पनिक व्यक्तिकरण ही कला है।
- ❖ **हीगेल**- कला आदि भौतिक सत्ता को व्यक्त करने का माध्यम है।
- ❖ **क्रोचे**- कला बाह्य प्रभाव की अभिव्यक्ति है।
- ❖ **वरमोन ब्लेक**- सुन्दरता को व्यक्त करना ही कला है।
- ❖ **वायटन**- मस्तिष्क की सृष्टि संबंधी चेष्टा ही कला है।

बिहार की कला परम्परा भी अत्यन्त प्रचीन, समृद्ध और गौरवशाली रही है। प्रागैतिहासिक काल से लेकर आधुनिक काल तक यहाँ की बहुआयामी कला ने भारतीय कला को प्रभावित किया है। लगभग 4000 ई. पू. भारत में नवपाषाण संस्कृति की शुरूआत हुई। इस काल में मानवीय, सभ्यता के अनुभवों में व्यापक परिवर्तन हुआ जिसके परिणामस्वरूप एक नवीन, मानवीय सभ्यता की नींव पड़ी। इस काल में मानव ने अपने रहने के लिए बस्तियों का निर्माण किया, तथा अपनी रक्षा एवं भोजन प्राप्त करने के लिए परिष्कृत उपकरणों का उपयोग शुरू किया। उनके द्वारा प्रयोग किए गए उपकरण कला के आदि स्वरूप को दर्शाता है।

छपरा के समीप गंगा नदी के तट पर अवस्थित, चिरांद और बेगुसराय के निकट स्थित मुसुरियाडीह से प्राप्त हुए नवपाषाणयुगीन अवशेषों के परीक्षण से मालूम होता है कि यहां के निवासियों ने चाक से भरी वार्निश, कृष्ण और लाल रंग के मृणपात्रों का निर्माण करना शुरू कर दिया था। नवपाषाण युग के अन्तिम समय में लोगों ने अपने दैनिक क्रिया-कलाप में धातुओं का उपयोग शुरू कर दिया था। इस प्रस्तर ताम्र युग में चाक पर बनने वाले श्याम और लाल मृणपात्रों का अधिकाधिक उपयोग शुरू हो गया। चिराँद, मनेर, चेचर और गया के समीप सोनपुर से काले एवं लाल मृदभांड, पूर्वी उत्तरी चमकीले मृदमांड और काले एवं लाल रंग के चित्रित मृदभांड मिले है। छोटानागपुर के पठार में ताँबे से बने उपकरण तथा कांसा (जिसका उपयोग देवी-देवताओं की मूर्ति बनाने में किया जाता था) उपयोग का साक्ष्य मिला है। आदिम मानवों को लोहे का ज्ञान होने के बाद नगरीकरण की प्रक्रिया शुरू

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

हुई नगरीकरण के इस दौर में बिहार में राजगीर और वैशाली के रूप में दो विश्व विख्यात नगर बने। इन नगरों में बड़े-बड़े भवनों का निर्माण शुरू हुआ। वैशाली के भवनों में सोने, चाँदी, ताँबा या पीतल के बुर्ज बने होते थे। राजगीर नगर चारों ओर से पत्थरों की दीवारों से घिरी हुई थी। इस प्रकार ई.पू. चौथी शताब्दी के पूर्व बिहार में मिट्टी और धातु के उपकरण बनाने, चित्रकारी करने एवं भवन तथा नगर निर्माण की कला की शुरुआत हो चुकी थी।

संस्कृतिः संस्कृति का संबंध हमारे संस्कार अथवा संस्क्रिया से हैं। यह प्रथम मतानुसार कार्य प्रधान व द्वितीय मतानुसार संस्कार प्रधान होता है। एक विद्वान का कथन है कि सम उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु से भूषण अर्थ में 'सूर' का आगमन करके ''वित्तन'' प्रत्यय करने से संस्कृति शब्द बना है। अनेकों विद्वानों का सामूहिक मत है कि संस्कृति को किसी समय विशेष की सीमा में नहीं बांधा जा सकता। यह देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार निरंतर विकसित होती रहती है। अतः यह सामाजिक प्रभावों से निरंतर विकासमान निर्देश्का है जो प्रकृतिजन्य है। पौराणिक काव्यों में मानव की संपूर्ण जीवन-शक्तियों और प्रगतिशील साधनाओं के प्रतिफलन को संस्कृति के रुप में संदर्भित किया गया है। लौकिक, पारलौकिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक या सामाजिक अभ्युदय से प्रभावित होकर मन, बुद्धि आदि जो प्रभाव ग्रहण करते है, वही संस्कार किसी संस्कृति का निर्माण करते है। इसलिए जब हम बिहार की संस्कृति का नाम लेते है तो स्वभावतः हम बिहार की उन क्षेत्रीय परंपराओं की ओर आकर्षित हाते है, जिनमें यहाँ के रीति-रिवाज, परंपराएँ, कर्मकांड, उत्सव, त्योहार, वेशभूषा सभी सम्मिलित है, जो बिहारी संस्कृति को स्वरुप प्रदान करते है।

बिहार की कला एवं संस्कृति को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है:-

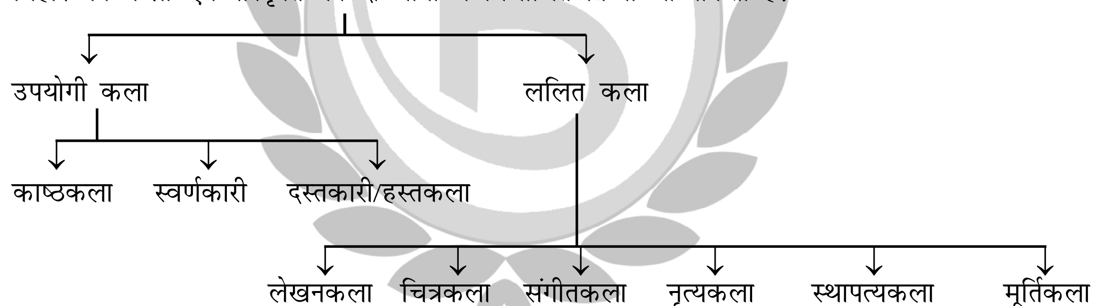

काष्ठ कलाः यह हस्तकला का एक रुप है जिसमें कलाकारों द्वारा काष्ठ (लकड़ी) पर विभिन्न प्रकार की कलात्मक वस्तुएँ बताई जाती है। वस्तुतः यह कला भारतीय राज्य राजस्थान में अतिप्रसिद्ध है तथापि बिहार के कई जिलों यथा सीतामढ़ी, मधुबनी, गया, दरभंगा, चम्पारण, पटना, भागलपुर आदि के साथ-साथ लगभग सभी जिलों में कमोवेश इसने प्रसिद्धि पाई है। आरंभ में काष्ठ से बच्चों के खिलौने, सिन्दूरदान, आदि बनाये जाते थे किन्तु आधुनिक समय में इनसे विभिन्न प्रकार की कलात्मक वस्तुएँ बनाई जाती है। जैसेः- लकड़ी की थाली, जांता, ओखली, मुसल, ग्लास, लोटा, चुल्हा, तवा, कलछुल, विभिन्न प्रकार के फल, फूल, सब्जी आदि। बिहार के गाँवों में लोगों के घरों की खिड़कियों, दरवाजों, संदूक आदि में भी काष्ठ कलाकारी देखी जा सकती है। विशेष अवसरों पर भी यहाँ के कलाकारों द्वारा लकड़ी से भिन्न-भिन्न कलाकृतियाँ बनाई जाती है। यहाँ पाई जाने वाली जंगली वृक्ष गौरेया की लकड़ी (यह लकड़ी वाल्मीकि व्याघ्र अभ्यारण्य, प. चंपारण, खड़गपुर की पहाड़ी तथा किशनगंज के पहाड़ी क्षेत्रों में पायी जाती है) वस्तुओं एवं खिलौने के निर्माण के लिए सर्वोत्तम मानी जाती है। वर्तमान बाजारवाद युग में काष्ठ से एक्यूप्रेशर तथा विभिन्न प्रकार की आकर्षक वस्तुएँ भी बनाई जा रही है। समृद्ध परंपरा

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

को बनाये रखने के लिए बिहार सरकार राज्य स्तर पर कई कल्याणकारी योजनाओं का क्रियान्वयन कर रही है। बिहार में रहने वाली बढ़ई जाति काष्ठकला में विशेष रुप से संलग्न है तथा यह उनकी जीविका का प्रमुख आधार भी है।

स्वर्णकारी कला: सभ्यता के विकास के साथ-साथ अनेक बहुमूल्य धातुओं की यथा सोना, चाँदी, ताँबा आदि की भी खोज हुई। जो लोग सोना से आभूषण बनाने में लग गए उन्हें स्वर्णकार कहा गया। सोना एक तन्य धातु होता है जिसे जितना चाहे पीट-पीट कर लम्बा अथवा चौड़ा किया जा सकता है। सोने के इसी गुण के कारण बिहार के कलाकार इससे भिन्न-भिन्न प्रकार के आभूषण बनाने में संलग्न हैं। सोने से बने विभिन्न डिजायनों के कंगन, कान की बाली, मंगलसूत्र, अंगूठी, लॉकेट, हार आदि बाजारों में देखे जा सकते हैं। कहीं-कहीं इन डिजायनों में बिहार की परंपरागत विशिष्ठता भी परिलक्षित होती है। पटना, मुजफ्फरपुर, दरभंगा, गया, समस्तीपुर, भागलपुर, पूर्णिया आदि बिहार के जिले स्वर्णकारी कला केन्द्र के रुप में प्रसिद्ध है। सामान्यतया बिहार में निवास करने वाली सोनार जाति तथा कुछ मारवाड़ी समूह के लोग इस कार्य में संलग्न है। सोने से बने आभूषणों का अंतरराज्यीय तथा अंतराराज्यीय व्यापार बिहार की अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान किए हुए है। चाँदी तथा ताँबे आदि धातुओं से बनी कलात्मक आकृतियाँ भी स्वर्णकारी कला के अंतर्गत आती है।

दस्तकारी/हस्तशिल्प: बिना किसी आधुनिक मशीनरी और उपकरणों की सहायता से हाथ के कौशल से तैयार किए गए रचनात्मक उत्पाद हस्तशिल्प के अंतर्गत आते हैं। बिहार की भव्य सांस्कृतिक विरासत और सदियों से क्रमिक रुप से विकास कर रही इस परम्परा की झलक बिहार में निर्मित अनेकों हस्तशिल्प निर्मित वस्तुओं में दिखाई देती है। बिहार के भागलपुर में बनी सिल्क की चादर, दरी, कालीन, मधुबनी में रद्दी पेपर से बने विभिन्न कलाकृतियाँ, सीतामढ़ी एवं दरभंगा जिले में बनी घास की टोकरी, पटना के कुशल कारीगरों द्वारा तैयार कृत्रिम ज्वेलरी एवं जरी सूट, मुजफ्फरपुर में तैयार फ्लावर मेकिंग के सामान, सारण में बने हैंड-बैग आदि देश के साथ-साथ विश्वभर में भी प्रसिद्ध है। इन हस्तशिल्पों की यह समूची सम्पत्ति हजारों सालों से बनी हुई है। इन शिल्पों में बिहार की संस्कृति का जादुई आकर्षण है जो इसकी अनन्यता, सौन्दर्य, गौरव और विशिष्टता का विश्वास दिलाता है।

केन्द्र सरकार की विभिन्न योजनाओं तथा बिहार सरकार द्वारा हस्तशिल्प उद्योग के विकास के लिए विशेषरुप से स्थापित उपेन्द्र महारथी शिल्प अनुसंधान संस्थान, पटना के प्रयासों के बाद बिहार हस्तशिल्प विनिर्माण का प्रमुख हब बनता जा रहा है, जिसकी तूती अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में भी बोल रही है। बिहार में हस्तशिल्प के प्रसिद्ध रुप इस प्रकार है:-

☞ **मिट्टी के हस्तशिल्प:-** सिंधु घाटी सभ्यता से अपनी विकास यात्रा शुरु कर वर्तमान में लगभग सभी घरों में मिट्टी से बने उत्पाद देखे जा सकते हैं। यह बिहार में हस्तशिल्प का सबसे प्राचीन रुप है। अपने विश्व प्रसिद्ध टेराकोटा रुप के अलावा मिट्टी के हस्तशिल्प बर्तन, बच्चों के खिलौने, चूल्हे, रसोई सामग्रीयाँ, मटका, सजावटी सामान, गहने, देवी-देवताओं आदि के रुप में भी है। बिहार के विशेष एवं विभिन्न त्यौहारों के अवसर पर मिट्टी से बनी कलाकृतियाँ घर-घर में देखी जा सकती है।

☞ **बांस या वेणु हस्तशिल्प:-** बांस का कार्य बिहार के हस्तशिल्पों में अहम स्थान रखता है। बिहार के कलाकारों द्वारा बनाई गई बांस के कार्यों में पारंपरिक तथा जापानी शैली का बेहतर समन्वय देखने को मिलता है।

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

इको-फ्रेंडली होने के कारण बांस से कई तरह के सामान बनाये जाते हैं। जैसे- टोकड़ी, गुड़िया, खिलौने, चलनी, चटाई, दीवार पर लटकाने का सामान, मचान, छाता का हैंडल, खोराही, कुला, डुकुला, काठी, गहने के बक्से आदि।

☞ **बेंत हस्तशिल्पः-** बेंत एक प्रकार की घास होती है जो बिहार में बहुतायत मात्रा में उपलब्ध है। बेंत का सामान बिहार में हस्तशिल्प का प्रसिद्ध रुप है जिसमें उपयोगी वस्तुएँ जैसे ट्रे, टोकरियाँ, स्टाइलिश फर्नीचर आदि शामिल है। बेंत को आकृति देने से पहले इसे आवश्यकतानुसार टुकड़ों में काट कर मोड़ते हैं। मोड़ने के लिए इसे लैम्प की आग पर गर्म करते है जिससे यह नर्म होकर आसानी से मुड़ जाता है। उसके बाद उसे अपनी आवश्यकता अनुरुप आकारों में मोड़कर बुनाई का काम किया जाता है।

☞ **पीतल हस्तशिल्पः-** पीतल अधिक टिकाऊ होता है जिस कारण इससे बने सामानों की अधिक मांग होती है तथा यह मशहूर भी होता है। पीतल से बने सामान जैसे देवी-देवताओं की विभिन्न मुद्राओं की मूर्तियाँ, फूलदान, टेबल टॉप, छेदवाले लैम्प, गहने के बक्से, हुक्का, खिलौने, शराब का प्याला, थाली, फलदान, पीकदान, और कई वस्तुएँ बिहार के घरों में प्रयोग की जाती है। बिहार के विभिन्न जिला मुख्यालयों में पीतल से बने बर्तनों का बड़ा बाजार है। पीतल के बने बर्तनों एवं अन्य सामानों को बनाने में लगे कारीगरों को कंसारी के नाम से भी जाना जाता है। बिहार में इनकी अच्छी संख्या है।

☞ **धोकरा हस्तशिल्पः-** धोकरा, हस्तशिल्प का सबसे पुराना रुप है और अपनी पारंपरिक सादगी के लिए जाना जाता है। यह एक आदिवासी हस्तशिल्प है जिसकी उत्पत्ति मध्यप्रदेश में हुई है। बिहार के पश्चिमी चम्पारण में कुछ आदिवासी समुदायों द्वारा इस कला को जीवित रखा गया है। धोकरा लोक चरित्र का प्रदर्शन करते अपने अनूठे सामानों के लिए जाना जाता है। बिहार के लगभग सभी हस्तशिल्प दुकानों में धोकरा के गहने, कैंडल स्टैंड, कलम स्टैण्ड, ऐश ट्रे और कई प्रकार के सामान मिलते हैं।

☞ **जूट हस्तशिल्पः-** जूट के पौधे से प्राप्त रेशों द्वारा अनेकों प्रकार की वस्तुएँ बनाई जाती है। इसके लिए विभिन्न प्रकार के फंदे लगाकर तथा गांठ देकर बुनाई करते हुए विभिन्न प्रकार के सामान तैयार किये जाते हैं। इससे बैग, कार्यालय का सामन, चूड़ियाँ, जूते-चप्पल, आसनी, गलीचे, सजावटी सामान, झोले इत्यादि बनाये जाते हैं। भारत में बिहार जूट उत्पादक अग्रणी राज्यों में से एक है इसलिए बिहार में जूट हस्तशिल्प का विस्तृत बाजार स्थापित हो गया है।

☞ **बुनाई या कढ़ाई हस्तशिल्पः-** दो धागों के सेट ताना और बाना से बुनकर कपड़ों के उत्पादन को बुनाई कहा जाता है। बिहार का भागलपुर जिला अपने कढ़ाई के काम के लिए जाना जाता है। यहाँ धागों के ताने-बाने से विभिन्न गुणवत्ता वाली कपड़ों की बुनाई की जाती है।

☞ **कागज हस्तशिल्पः-** चटकदार रंगों वाले कागज को मिलाकर कई प्रकार की वस्तुएँ जैसे पतंग, मास्क, सजावटी फूल, कठपुतली, हाथ के पंखे आदि बनाये जाते हैं। मुगलकाल में विकसित हुआ कुट्टी भारत के साथ-साथ बिहार में कागज हस्तशिल्प का प्रसिद्ध रुप है। यह शिल्प उद्योग मुख्य रुप से राजगीर, गया, पटना, मुजफ्फरपुर, कटिहार आदि शहरों में स्थित है। इसके अलावे कागज के शिल्पकार बिहार के लगभग हर शहर में मिल जाते हैं।

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

☞ **पेपर मैशेः** यह छऊ नृत्य में प्रयोग किए जाने वाले विभिन्न रंगों से सजी आकर्षक मुखौटा तैयार करने की कला है जिसका निर्माण पटना सिटी, मधुबनी, दरभंगा, आदि स्थानों पर किया जाता है। पेपर मैशे को बनाने के लिए सफेद कागज को एक बर्तन में पानी तथा रंग डाल कर 7-8 दिन तक छोड़ देते है। जब कागज पूरी तरह से गल जाता है तो उसे पानी में से निकालकर गोंद और मुल्तानी मिट्टी की सहायता से गुंथ लेते है फिर उसे मनचाहा आकार देकर मुखौटा, सजावट के सामान, मूर्तियाँ, बक्से, डिब्बे आदि बनाये जाते है।

☞ **सिक्की कलाः** यह कला परंपरा उत्तरी बिहार में बहुत पहले से चली आ रही है। यह कला कितनी पुरानी है इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है। किंतु यहाँ के लोग इसे प्राचीन कला ही मानते है। मिथिलांचल क्षेत्र में लकड़ियों की शादी के बाद बिदाई के समय में वधु पक्ष की ओर से सिक्की से बने सामान दिए जाने की परंपरा है। सिक्की एक प्रकार की घास होती है, जिसे रंगकर तथा लपेटकर विभिन्न प्रकार की रोजमर्रा की आवश्यक वस्तुएँ जैसेः- टोकरियाँ, दौरियाँ, बक्से, घड़े इत्यादि बनायी जाती है।

लेखनकलाः महान धार्मिक तथा दार्शनिक शिक्षा केन्द्र के रूप में ख्यातिप्राप्त बिहार में लेखनकला का भी विकास हुआ। यहाँ धर्म, राजनीति, शासन व्यवस्था, दर्शन आदि पर अनेकानेक पुस्तकें लिखी गई। समय काल की धारा में निरंतर बहते हुए लिखने की विभिन्न विधाओं का विकास हुआ। यहाँ पद्य एवं गद्य दोनों रूपों में पुस्तकों की रचना की गई।

भारतीय शास्त्र के उच्चकोटि के लेखन का प्रारम्भ राजा जनक की सभा की शोभावर्द्धक तथा उज्जवल ताराओं के समान पंडित मंडली द्वारा ही हुआ था। इन पंडितों ने कई लघु ग्रन्थ एवं टीका की रचना की थी। जगत विख्यात राजनीति-विशारद तथा अभिनव और सुचिंतित कौटिल्य ने 'कौटिल्यशास्त्र' की रचना की जो समूचे विश्व में राजनीति शास्त्र तथा साहित्य का बेजोड़ तथा प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। याज्ञवल्क्य ने अपने लेखन कौशल से विश्व को भारत के प्रसिद्ध सामाजिक-विधि-विज्ञान से परिचित करवाया। बाद के वर्षो में लक्ष्मीधर, श्रीधर, हलायुध, भवदेव, श्रीधर, अनिरूद्ध, हरिहर तथा चन्द्रेश्वर ने विधिशास्त्र पर अनेक लेख लिखे।

बिहार के पद्मनाभ को 'सुपद्म व्याकरण' लिखने का गौरव प्राप्त है। काव्य तथा अलंकार शास्त्र के जगत में यहाँ के अनेक कवि-कोविद स्मरणीय है। 'काव्य-प्रदीप' के रचयिता गोविन्द ठाकुर, 'रसमंजरी' के रचयिता भानुदत्त, 'चन्द्रालोक' लेखक जयदेव, 'रसार्णव' के लेखक शंकर तथा 'गीतगोपीपति' के रचयिता कृष्णदत्त की लेखनशैली अद्वितीय है। विद्यापति की अमर कविताएं आज भी पाठकों के हृदय में अपूर्व भाव जागृत करती हैं तथा उनके मानस में नवीन प्रेरणा प्रदान करती है। गद्य-साहित्य में ज्योतिरीश्वर ठाकुर लिखित 'वर्णरत्नाकर' (12-13वीं सदी) तथा विद्यापति रचित 'कीर्तिलता' एवं 'कीर्तिपताका' उच्च कोटि के साहित्य के निदर्शक है। वस्तुतः लेखनकला का सर्वाधिक विकास बिहार के मिथिला क्षेत्र में ही हुआ था और यह क्षेत्र आज भी लेखन विधि में अग्रणी है।

चित्रकलाः

☞ **पटना चित्रकलाः** मुगल शासन ने चित्रकला की ऐसी सजीव परंपरा की सृष्टि की जो मुगल साम्राज्य के विघटन के बाद भी विभिन्न रूपों में देश के अलग-अलग हिस्सों में फली-फूली। मुगल साम्राज्य के पतन की अवस्था में शाही दरबारों में स्थानीय कलाकारों को प्रश्रय नहीं मिला। परिणामस्वरूप आश्रय एवं रोजगार की तलाश में इनका पलायन देश के अन्य क्षेत्रों में होने लगा। इसी क्रम में 1760 ई० के आसपास कुछ पलायित चित्रकार तत्कालीन राजधानी पाटलीपुत्र आकर बस गए क्योंकि उस समय पाटलीपुत्र एक प्रमुख व्यापारिक केंद्र के रूप में उभर रहा था। इन चित्रकारों

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

ने राजधानी के लोदी कटरा, मुगलपुरा दीवान मोहल्ला, मच्छरहट्टा तथा नित्यानन्द का कुँआ क्षेत्र में तथा कुछ अन्य चित्रकारों ने आरा तथा दानापुर में बसकर चित्रकला के क्षेत्रीय रूप को विकसित किया। चित्रकला का यही क्षेत्रीय रूप 'पटना कलम शैली' कही जाती है। चूँकि अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक भारत में ब्रिटिश शासन व्यवस्था ने भी अपनी जड़े जमाना शुरू कर दिया था। इसलिए पटना कलम शैली के चित्रों पर एक तरफ मुगलशाही चित्रकला शैली तथा दूसरी तरफ समकालीक ब्रिटिश कला शैली के साथ-साथ स्थानीय कला का भी प्रभाव परिलक्षित होता है। ऐसा कहा जाता है कि मुगल बादशाह अकबर के दरबार के दो कलाकारों नोहर और मनोहर ने पटना कलम की शुरूआत की थी। मध्य अठाहरवीं शताब्दी में चित्रकला के तीन स्कूल थे, *मुगल, एंग्लो-इंडियन और पहाड़ी।* लेकिन पटना कलम शैली का विकास तेजी से हुआ और चारों ओर इसकी प्रसिद्धि फैल गई। बाद के वर्षों में कुछ ब्रिटिश कला प्रेमियों ने भी इसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इसलिए पटना कलम शैली को इंडो-ब्रिटिश शैली भी कहा जाता है।

पटना कलम के चित्र लघु चित्रों की श्रेणी में आते हैं जिन्हें अधिकतर कागज और कहीं-कहीं हाथी दाँत पर बनाया गया है। सामान्यत: इस शैली के चित्रकारों ने तत्कालीन बिहार की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक जीवन से संबंधित क्रियाकलापों के चित्रों को बनाया है। जैसे बढ़ई, लोहार, धोबी, तांगाबाला, रसोइयाँ, फुटपाथ पर दुकान, मदरसा, पाठशाला, दाह-संस्कार त्योहारौं, साधु-संतों आदि के चित्र। इसके अलावा इस शैली के चित्रों में पशु-पक्षियों को भी दिखाया गया है तथा विभिन्न प्रकार के फूलों का भी चित्रण हुआ है। पशु-पक्षियों के चित्रों के अंग इतने बारीकी से चित्रित हुए हैं, मानो उस समय के चित्रकार पशु-विज्ञान शाखा से परिचित थे। पुन: पशु-पक्षियों के चित्र, चित्रकारों के प्रकृति के प्रति प्रेम तथा सजगता को प्रदर्शित करता है।

पटना कलम शैली की निम्नलिखित विशेषताएं देखी जा सकती हैं-

- यद्यपि चित्रों में मुगल शैली जैसी भव्यता का अभाव है तथापि चित्र सादगीपूर्ण एवं समानुपातिक रूप में बनाए गए हैं।
- चित्रों में पृष्ठभूमि एवं लैंडस्केप का ज्यादा प्रयोग नहीं किया गया है। अत: चित्र वास्तविक प्रतीत होते हैं।
- मनुष्यों के चित्रों में ऊँची नाक भारी भवे, पतले चेहरे, घनी मूँछे बनाए गए हैं।
- चित्रों को रंगने के लिए कलाकारों द्वारा प्राकृतिक स्त्रोतों से रंग स्वयं तैयार किये जाते थे। जैसे लाल रंग लाह से, सफेद रंग मिट्टी से, काला रंग कालिख से, नीला रंग नील से, तथा हरे रंग के लिए नीला और पीले रंगों के मिश्रण का प्रयोग किया जाता था। इसके अलावा सोने के वर्कों से सुनहरा एवं चाँदी के वर्कों से चाँदी जैसा रंग तैयार किया जाता था।
- चित्र सीधे कागज पर ब्रश से बनाए एवं रंगे जाते थे। ब्रश पक्षियों के फर से तथा कागज खराब पेपर को पुनर्चक्रीत करके बनाया जाता था। ब्रश से, सीधे एवं तुरंत कागज पर रंगने की तकनीक 'कजली स्याही' कहलाती है।
- चित्रों को रंगनें में गाढ़े रंगों के बजाय हल्के रंगों का प्रयोग किया जाता था ताकि चित्रों का जीवनकाल ज्यादा हो।

पटना कलम शैली के चित्रकारों ने कहीं-कहीं अपनी दबी हुई कल्पनाओं को भी अलंकृत किया है, जैसे-

- महादेव लाल द्वारा बनाई गई 'गोधारी चित्र' जिसमें नायिका के विरह के अवसाद को बड़ी ही बारीकी से दर्शाया गया है।
- माधोलाल द्वारा बनाई गई 'रांगिनी तोड़ी' पर आधारित चित्र जिसकी नायिका एक विरहणी है तथा विरह में वह वीणा बजाती हुई चित्रित की गई है।

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

- इसी प्रकार से शिवलाल द्वारा निर्मित 'मुस्लिम निकाह' का चित्र तथा यमुना प्रसाद द्वारा 'बेगमों की शराबखोरी' का चित्र भी पटना कलम में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।
- हुलास लाल द्वारा बनाई गई 'होली' तथा 'दीवाली' के दृश्यों पर आधारित चित्र इतनी बारीकी से बनाया गया है कि वह सजीव प्रतीत होता है।

'पटना कलम' शैली के अग्रणी चित्रकारों में *सेवकराम* (1770-1830) का नाम आता है। इसके अतिरिक्त इस शैली के प्रमुख चित्रकारों में *जयराम दास, फकीरचंद, झूमक लाल, नित्यानन्द लाल, हुन्नीलाल, शिवलाल, महादेव लाल, श्याम बिहारी* का नाम लिया जा सकता है। चूँकि इस शैली के अधिकांश चित्रकार पुरुष है, इसलिए इस चित्रकला शैली को 'पुरुषों की चित्रकला' से भी संबोधित किया जाता है।

पटला कलम में हाथी-दाँत की चित्रकारी भी फली-फूली और अधिक प्रसिद्ध भी हुई। *लाल चन्द* एवं *गोपाल चन्द* इसके दो प्रमुख चित्रकार थे जिन्हें बनारस के महाराज ईश्वर नारायण सिंह ने अपने राजदरबार में शरण दी थी। पटना में इसके महारथी थे- *'दल्लूलाल'*। पटला शैली की शबीहें तैयार करने में इनका उल्लेखनीय योगदान है। ब्रिटिश काल के अंत तक यह शैली भी लगभग अंत के करीब पहुँच गई। श्यामलानंद और राधेमोहन प्रसाद इसी शैली के कलाकार थे। राधेमोहन प्रसाद ने ही बाद में पटना आर्ट कालेज की स्थापना की थी जो कई दशकों से देश में कला-गतिविधियों का एक प्रमुख केंद्र है। ईश्वरी प्रसाद वर्मा भारत में पटना कलम शैली के अंतिम चित्रकार थे। उनकी मृत्यु के साथ ही पटना कलम शैली का अंत हो गया। पटना कलम की कलाकृतियाँ आज भी पटना आर्ट कॉलेज, खुदाबख्श लाइब्रेरी, तथा पटना म्यूजियम में सुरक्षित है।

☞ **मधुबनी चित्रकला:** मधुबनी चित्रकला राज्य के मिथिलाँचल क्षेत्र जैसे दरभंगा, मधुबनी, सीतामढ़ी तथा नेपाल के कुछ क्षेत्रों की प्रमुख चित्रशैली है। यह चित्रकला कितनी पुरानी है, इसका कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है परंतु इस पेंटिंग का प्रथम साक्ष्य विद्यापति द्वारा लिखी गई पुस्तक 'कीर्तीपताका' में मिलता है। प्रारंभ में रंगोली के रूप में रहने के बाद यह धीरे-धीरे आधुनिक रूप में कपड़ों, दीवारों, कागज, बैग आदि पर उतर आई है। मिथिला की महिलाओं द्वारा शुरू की गई इस घरेलु चित्रकला को अब पुरुषों ने भी अपना लिया है।

मिथिला की महिलायें पारंपरिक रूप से अपने घरों-दरवाजों पर चित्रों को उकेरती रही है। इन चित्रों में समूचा संसार रच-बस जाता है। पिछले कुछ दशकों से इस चित्रकला को कपड़े या फिर पेपर के कैनवास पर भी खूब बनाया जा रहा है। मधुबनी जिले के जितवारपुर गाँव की जगदंबा देवी, सीता देवी और रसीदपुर गाँव की गंगा देवी के साथ मिथिला पेंटिंग को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति दिलवाने में महासुंदरी देवी की अहम् भूमिका रही है। अनेक पुरस्कारों से सम्मानित महासुंदरी देवी को वर्ष 2011 में भारत सरकार ने कला के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान के लिए 'पद्मश्री' से सम्मानित किया था। मधुबनी चित्रकला को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है- भित्ती चित्र और अरिपन या अल्पना।

भित्ती चित्र: इसे मिट्टी से पुती दीवारों पर बनाया जाता है। इसे घर की तीन खास स्थानों पर ही बनाने की परंपरा है जैसे- भगवान का घर, नव-विवाहितों के कमरें एवं शादी या किसी विशेष उत्सव पर घर की बाहरी दीवारों पर। भगवान के चित्रों में जिन देवी-देवताओं को दिखाया जाता है, उनमें माँ दुर्गा काली, सीता-राम, राधा-कृष्ण, शिव-पार्वती, गौरी-गणेश, तथा विष्णु के दस अवतार, नव-विवाहित जोड़ों के लिए बने कोहबर घर में प्रतीक रूप में प्रजनन के अवयवों, मिथकों और लोक कथाओं का चित्रण, जीवन दर्शन को ही निरूपित किया जाता है। कोहबर घर के भीतर और बाहर बने चित्र कामुक प्रवृत्ति के होते हैं। कोहबर के बाहर रति एवं कामदेव के चित्र एवं इसके भीतर पुरुष-नारी के जननांगों की आकृति तथा चारों कोणों पर यक्षिणी के चित्र बनाये जाते हैं। पशु-पक्षियों की चित्रकारी

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

प्रतीक रुप में होती है जिसमें सुग्गे काम वाहक प्रतीक के रुप में, मछली कामोत्तेजक प्रतीक के रुप में, सिंह शक्ति के प्रतीक के रुप में, हाथी-घोड़े ऐश्वर्य के प्रतीक के रुप में, हंस-मयूर शांति के प्रतीक के रुप में चित्रित/प्रयोग किए जाते हैं। कुछ पौधो की आकृतियाँ भी कोहबर घर में देखी जा सकती है। यथा केला एवं बांस के चित्र। केला मांसलता तथा बाँस, वंशवृद्धि के प्रतीक के रुप में कोहबर की भीतरी दीवारों पर चित्रित किए जाते हैं। नवविवाहित जोड़ों को सर्वप्रथम कोहबर घर में बने सूर्य एवं चन्द्र की आकृतियों के दर्शन कराए जाते है जो दीर्घ जीवन के प्रतीक के रुप में बनाए जाते हैं। उत्सव विशेष अवसर पर कई प्राकृतिक और रम्य नजारों की पेंटिंग बनाई जाती है। जैसे पशु-पक्षी, सूर्य व चन्द्रमा, धार्मिक पेड़-पौधे (यथा तुलसी), फूल-पत्ती आदि को स्वास्तिक के चिह्न के साथ सजाया-सँवारा जाता है।

अरिपनः मिथिला में जितने भी त्योहार या उत्सव होते हैं, उन सब में आँगन और दीवारों पर चित्रकारी करने की बहुत पुरानी परम्परा है। आँगन में जो चित्रकारी की जाती है उसे अरिपन तथा दीवारों पर की गई चित्रकारी को *पट्टचित्र* कहा जाता है। प्रारम्भ में इसे इसलिए बनाया जाता था ताकि खेतों में फसल की पैदावार अच्छी हो लेकिन अब इसे शुभ कामों में भी बनाया जाता है। बंगाल में अल्पना एवं मिथिला में अरिपन के रुप में यह परम्परा महिलाओं द्वारा पीढ़ी-दर-पीढ़ी संस्कृति के रुप में बढ़ती रही है। यह आँगन या चौखट के सामने जमीन पर बनाये जाने वाले आकर्षक चित्र होते है। चित्र बनाने के लिए माचिस की तीली व बाँस की कूची को बहुत देर तक पानी में भिगोने के बाद सिलवट (सिलउटी-लोढ़ी) पर अच्छी तरह पीस लिया जाता है। उसमें थोड़ा पानी मिलाकर एक गाढ़ा घोल तैयार किया जाता है जिसे 'पिठार' कहा जाता है। इसी पिठार से गाय के गोबर या चिकनी मिट्टी से लीपी गई भूमि पर महिलाएँ अपनी ऊँगलियों से चित्र या अरिपन बनाती है। विशेष बात यह है कि अलग-अलग उत्सवों पर भिन्न-भिन्न अरिपन बनाया जाता है। जैसेः- अविवाहित लड़कियों के लिए तुलसी पूजा के अवसर पर बनाए गये अरिपनों में ज्यामितीय आकारों, विशेषकर त्रिकोणात्मक और आयताकार आकारों का अधिक प्रयोग होता है। विवाह और उत्सवों के अवसर पर पत्तियों के आकार का सर्वाधिक उपयोग होता है। इस प्रकार यह अन्य लोकथाओं की भांति विभिन्न पर्व-त्योहारों, अनुष्ठानों, विवाह, यज्ञोपवीत एवं शुभ धार्मिक अवसरों से अभिन्न रुप से जुड़े रहते हैं।

मधुबनी चित्रकला के चित्रों में चटख रंगों का प्रयोग खूब किया जाता है और ये रंग भी प्राकृतिक स्त्रोतों से ही बनाए जाते हैं, जैसे- हरा रंग हरी पत्तियों से, पीला रंग सरसों एवं हल्दी से, सिंदूरी रंग सिंदूर से लाल रंग पीपल की छाल से, सफेद रंग दूध एवं चावल से। इसके अतिरिक्त चित्रों में गुलाबी एवं नींबू रंगों का भी प्रयोग किया जाता है। रंग की पकड़ को मजबूत बनाने के लिए रंगों में बबूल के वृक्ष की गोंद को मिलाया जाता है। किन्तु वर्तमान समय में रासायनिक रंगों का भी प्रयोग किया जा रहा है। मधुबनी चित्रकला में चित्रण में रंगों का समायोजन विशेष उल्लेखनीय है। पीला रंग धरती, उजला रंग पानी, लाल रंग आग, काला रंग वायु एवं नीला रंग आकाश के लिए प्रयोग किया जाता है।

☞ **मंजूषा चित्रकलाः** यह चित्रकला शैली संपूर्ण अंग प्रदेश/क्षेत्र में अपनी लोकप्रियता के लिए प्रसिद्ध है। भागलपुर के लोकगाथाओं में सर्वाधिक प्रचलित बिहुला विषहरी की कथाओं के आधार पर इस चित्र-शैली के चित्रों को सनाठी (संठी) की लकड़ी से बनाई जाती है। इसमें प्राकृतिक रंगों का प्रयोग किया जाता है। इस शैली की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि इसमें महिला या पुरुषों के चेहरों का केवल बायाँ पक्ष/भाग ही बनाया जाता है, जो निश्चित रुप से इसे अन्य चित्रकला शैलियों से अलग करता है। मंजूषा में बांस की खंपाची की बनायी हुई मंदिरनुमा आकृति होती है जिसपर चित्रकारी की जाती है।

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

☞ **टिकुली चित्रकला:** यह बिहार की प्राचीन कलाओं में से एक है। पहले यह कार्य बहुत ही पतले शीशे पर सोने और चाँदी के वर्को द्वारा किया जाता था जिसे महिलायें अपने ललाट पर लगाती थी। इस कला के द्वारा चित्र बनाने के लिए सर्वप्रथम चित्र का आधार तैयार किया जाता है। इसके लिए बोर्ड को गोल, आयत तथा वर्गाकार टुकड़ों में काटा जाता है फिर उसपर रंग चढ़ाया जाता है। इसी तैयार प्लेट पर चित्रकारी की जाती है। इस कला के द्वारा सुन्दर चित्र बनाये जाते है जो घरों की सजावट में काम आते है।

☞ **सुजनी चित्रकला:** सुजनी कला का जन्म बिहार के मुजफ्फरपुर जिले के भुसरा गांव में हुआ है परंतु कब हुआ इसका ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है। 2006 में इसे भौगोलिक संकेतक प्रदान किया गया। मिथिला क्षेत्र के कुछ मधुबनी चित्रकला शैली के चित्रकारों का मानना है कि सुजनी कला, मधुबनी चित्रकला का ही एक अपरूप है। अत: इसे मधुबनी चित्रकारी की चचेरी बहन भी कहा जाता है परंतु शिल्पगत विशेषता के दृष्टिकोण से यह कलकत्ता के कंठा शैली से समरूपता रखती है। इस कला में समकालीन जीवन के चित्रों (विशेषकर बाल विवाह जैसी सामाजिक कुरीति के चित्र) को बनाया जाता है।

☞ **सांझी चित्रकला:** यह कला उत्तर प्रदेश के ब्रज क्षेत्र में विशेषरूप से प्रचलित है। ब्रज क्षेत्र के अलावा बिहार के पटना, वैशाली आदि क्षेत्रों में भी यह प्रचलित है। इस शैली के अंतर्गत अल्पना, रंगोली, अरिपन आदि बनाये जाते है। चित्रों में रंग भरने के लिए इस शैली में चटख रंगों का खूब प्रयोग किया जाता है।

☞ **कोहबर अंकन चित्रकला:** बिहार का मगध क्षेत्र भारतीय संस्कृति को गौरवशाली बनाती है। मगध क्षेत्र में कोहबर अंकन की प्रथा है जिसमें सूर्य, चन्द्रमा, फूल-पत्ती, चिड़ियों के साथ-साथ वर-वधू का नाम लिखा जाता है। यह चित्रण एक या दो रंगो में होती है। आरा, छपरा, सिवान, गोपालगंज बक्सर, रोहतास आदि जिलों में भी कोहबर अंकन की प्रथा प्रचलित है। किन्तु यहाँ की लोक चित्रशैली अपने अलग रूप में दिखाई देती है। विभिन्न पर्व-त्योहारों अथवा विशेष अवसरों पर यहाँ लोक चित्रांकन की परम्परा है। कोहबर के चित्रों में ज्यामितीय आकृतियों का अधिक प्रयोग होता है। जैसे- कंघी, बाँस, मछली, शंख, सूर्य, चन्द्रमा, लता, पुष्प, कमल और ऊँ शब्द कोहबर में सिंहोरा पालकी का चित्रण किया जाता है। कालिख का प्रयोग बुरी नजर से बचाने के लिए किया जाता है।

संगीत कला

संगीत को सृजनशील प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति का माध्यम कहा गया है। साथ ही यह सुगम मनोरंजन का साधन भी है। विभिन्न कलाओं को जन्म देने वाली बिहार की भूमि संगीत की भी साधना, समाहार और आविष्कार की भूमि रही है। बिहार में जन्में विद्वान ऋषि याज्ञवलक्य ने ही संगीत को सर्वप्रथम मुक्ति का मार्ग घोषित किया था। ऋषि भृगु, गौतम आदि के समागम से गुंजित आश्रयों से प्रवाहमान संगीत भारतीय जीवन और संस्कृति का अभिन्न अंग बना था। बिहार में प्राचीन काल से ही विभिन्न रागों का प्रचलन था जो विभिन्न संस्कारों के समय प्रयुक्त होते थे। मध्यकाल में बिहार के उदारमना सूफी एंव संगीत के आकर्षण से प्रभावित हुए। हिन्दी के मुस्लिम सूफी कवि शेख कुतबन ने अपने प्रेमकाव्य 'मृगावती' में भारत पिंगल का उल्लेख किया है। उन्होंने 'किंगरी', 'बीन' आदि कुछेक वाद्ययंत्रों के नाम भी गिनाए है जो गोरखपंथी साधुओं द्वारा व्यवहार में लाए जाते थे। कुतबन ने कुल 36 राग रागिनियों की चर्चा की है।

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

बाजे, साज, सबद, सह, थप्पई, चाव (छाव) सपरान राग अलापे और छत्तीस भरज अहा, अइन अेक राग पछ-पछ (पच-पच) कहा अइन। राग-रागिनियों के नाम इस प्रकार हैं:-

राग		रागिनी
भैरव	-	मध मालती, सन्धुरा, बंगला, वैराटिक, गुणकी।
कौशिकी	-	गौरी, देवकार (देसकार), तोड़ी, खंभावती, कुकुभ।
हिंडोल	-	देसाख, वैराटी, ननसहजगता, अवादी।
दीपक	-	कामोद, पटमंजरी, पंचवरांगना, केराय।
श्री	-	हेमकली, मतर, गूजरी, भुयुन (भीम), वितासी, खट्ट।
मेघ	-	मेहसरी, सारंगी, वरारी, धनाश्री, कन्धारी।

आदिकाल से ही एक न एक भाषा प्राय: समस्त उत्तरापथ में इस प्रकार प्रचलित रही है कि वह समस्त क्षेत्र की संस्कृति और कला को एकसूत्र में बांधकर रखे। बौद्धकालीन समय में यह काम किया बिहार में जन्मी पाली भाषा ने मध्यकाल में आकर यही काम ब्रज भाषा ने किया। फलत: जहां कहीं भी गीत रचित हुए उनकी भाषा ब्रजभाषा रही। भले ही उसमें कुछ स्थानीय शब्द या मुहावरे अवश्य आ गए।

बुद्धकाल में बिहार के राजगीर और वैशाली में गायिकाओं और नर्तकियों की उपस्थिति के प्रमाण मिलते है। इन्हें नगर शोभिनी कहा जाता था। विशाल साम्राज्यों के उदय के साथ राजनर्तकियों की परम्परा का और भी विकास हुआ। मध्यकाल में ही मिथिला साहित्य और संगीत का अजस्त्र स्रोत रहा। कर्णप्रिय मैथिली संगीत को लोग जीवन का अंश मानकर उसे विकासशील बनाते रहे। मिथिला के कर्णाटवंशी शासक नान्येदव ने रागों का सम्यक् विश्लेषण और इसका विभाजन कर राग-संगीत को नई ऊँचाई दी। उन्होंने संगीत विषय से संबंधित 'सरस्वती ह्रदयलंकार' नामक एक पुस्तक की भी रचना की जिसकी पाण्डुलिपि पूना के भण्डारकर अनुसंधान संस्थान में सुरक्षित है। बिहार में तुर्क शासन की स्थापना के बाद सूफी संतों के माध्यम से संगीत की प्रगति हुई। वे धार्मिक गोष्ठियों और प्रवचनों के समय भजन और आध्यात्मिक गीत गाते थे जिन्हें सोम गायन कहा जाता था। वैष्णम धर्म सुधार आन्दोलन के माध्यम से भी नृत्य और संगीत दोनों का विकास हुआ। मिथिलांचल के प्रसिद्ध कवि विद्यापति ने नचारी राग के गीतों का सृजन किया था। विद्यापति के काल में समूचे बिहार में प्रत्येक पर्व-त्यौहार के अवसर पर ये गीत घर-घर गाये जाते थे। उन्होंने राग के गीतों की भी रचना की जो विवाह के अवसर पर गाये जाते थे। आज भी ऐसे शुभ अवसरों पर विद्यापति के गीत गाये जाते है।

18वीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य के पतनोपरांत शास्त्रीय संगीत पूरब की ओर प्रसारित होने लगा। शास्त्रीय संगीत के विशेषज्ञ दिल्ली से लखनऊ, बनारस, और बिहार की ओर प्रस्थान कर गये। बिहार के विभिन्न राजघरानों यथा बेतिया, दरभंगा, बनैली, आरा, टेकारी, डुमरांव, पंचगछिया, चंपानगर, पंचोभ, सकरपुरा, बड़हिया, गया आदि ने संगीतकारों को अपने यहाँ आश्रय दिया। प्रख्यात ध्रुवद गायक चमारी मल्लिक तथा बीनकार मल्लिक को बेतिया नरेश राजसिंह ने संरक्षण दिया। बाद में बेतिया नरेशों ने भी ऐसा ही किया। इस प्रकार से ध्रुपद गायन का तीव्र गति से विकास हुआ। 20 वीं शताब्दी में अमता घराने के राम चतुर मल्लिक सर्वश्रेष्ठ ध्रुपद गायक थे। गायन की पुरानी परंपरा के अनुकूल बंदिश के चारों तुक के रख-रखाव, राग की शुद्धता तथा लय की उन्नत सूझ-बूझ के साथ इनका गायन भाव के अनुकूल होता था। ये ठुमरी, टप्पा और ख्याल भी बड़ी ही कुशलता से गाते थे।

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

अभिजात संगीत के अंतर्गत ख्याल और ठुमरी गायन की बिहार में एक समृद्ध परंपरा रही है। चूंकि इस समय तक पटना प्रमुख व्यापारिक केन्द्र के रूप में स्थापित हो चुका था तथा यहाँ कलाप्रेमियों की भी अधिक संख्या थी इसलिए पटना में इनकी शैलियों को विशेष लोकप्रियता मिली। पटना की जोहराबाई ठुमरी के लिए विशेष प्रसिद्ध थी। इसके अलावा चैती, कजरी तथा गजल आदि शैलियों को भी लोक गायिकाओं जैसे मोहम्मद बाँदी, रोशनआरा बेगम, रामदासी आदि ने लोकप्रिय बनाने में विशेष योगदान दिया। बिहार में गायकों द्वारा यंत्र संगीत की परम्परा को भी विकसित किया गया जिसमें सितार, मृदंग, पखावज और इसराज के भी चोटी के गायक यहाँ हुए। सितार वादन में दरभंगा के पाठक घराने की उपलब्धियाँ उल्लेखनीय है। अवध पाठक, बलराम पाठक, रामेश्वर पाठक, रामगोविन्द पाठक तथा देवराज मिश्र इस घराने के प्रमुख वादक है। ऐसी किंवदन्ती हैं कि विश्व विख्यात सितार वादक पंडित रविशंकर अपने गुरू अलाउद्दीन खाँ के साथ दरंभगा आये थे। गया के चंद्रिका दूबे को इसराज वादक में महारत हासिल था। वे छः राग और तीस रागनियों की राग माला प्रस्तुत करते थे। तबला वादन में उस्ताद कदर अली और सुलेमान खान तथा सांरगी वादन के क्षेत्र में बहादुर हुसैन और अता हुसैन ने विशेष उपलब्धि हासिल की।

8वीं सदी से 12वीं सदी ईस्वी में बिहार की माटी-पानी से जुड़े सिद्धसंत सरहपा, शबरपा, भूसुकपा, वीणापा, कान्हपा, लुइपा आदि केवल उपदेशक, मतप्रचारक या साधक ही नहीं थे, इनमें विलक्षण कवि-प्रतिभा थी तथा वे उच्च कोटि के संगीतज्ञ भी थे। इनके पद अक्सर राग-रागिनी में आबद्ध मिलते हैं। अनेक पदों में किसी राग या रागिनी का स्पष्ट निर्देश किया गया है। जिन राग-रागिनियों का उल्लेख इनके पदों में अक्सर मिलता है। उनमें कुछ के नाम हैं- देसाख, भैरवी, पटमंजरी, कामोद, गड़बा (गौड़ का अपभ्रंश), देवकी, गुर्जरी, मल्लारी, बराड़ा, धनछी इत्यादि। सरहपा के शिष्य शबरपा के राग बलाड्डी तथा नालंदा के समीप रहने वाले सिद्ध कवि भूसुक के राग मल्लोही में पद मिलते हैं। बलाड्डी तथा मल्लोहि राग का उल्लेख अन्यत्र नहीं मिलता है। सम्भव है बलाड्डी और मल्लोही राग बरारी तथा मल्लार हो।

सरहपा विक्रमशिला के रहने वाले थे। सरहपा अपने जीवन के पूर्वार्द्ध में नालंदा में रहे। विद्यापति के गीति पदों में भी अधिकतर इन्हीं राग-रागिनियों का निर्देश किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि सिद्धों की वाणी का प्रभाव विद्यापति पर है।

मध्यकाल में सूफियों ने संगीत का संवर्द्धन अपने अनुसार किया। चिश्ती परम्परा द्वारा संगीत का प्रचार हुआ। बिहार में शेख निजामुद्दीन चिश्ती के खलीफा ख्वाजा करीमुद्दीन बयाना थे। शेख की मृत्यु के पश्चात मुहम्मद तुगलक ने उन्हें गया जिले के सतगांवा का इलाका जागीर स्वरुप दिया। शेख निजामुद्दीन चिश्ती के उत्तराधिकारी ख्वाजा नसीरुद्दीन महमूद ''चिरागे देहली'' के पीर भाई ख्वाजा मखदूमअली सिराज की सिराजिया परम्परा ने बिहार में इन्द्रप्रस्थ मत का प्रचार किया। अमीर खुसरो, शेख निजामुद्दीन चिश्ती के मुरीद थे। खुसरो ईरानी रागों को भारत में प्रचलित करना तथा भारतीय रागों को मुसलमानों में लोकप्रिय बनाना चाहते थे। संगीत सीखने एवं सिखाने के लिए उन्होंने एक ऐसी पद्धति का निर्माण करने का प्रयास किया जिसमें ईरानी और भारतीय रागों का वर्गीकरण एक ही ढंग से हो सके। कालान्तर में यही पद्धति उत्तर भारत में ''ठाठ'' पद्धति कहलायी। भारतीय रागों के वर्गीकरण के मुस्लिम आधार को 19वीं सदी में इन्द्रप्रस्थ मत कहा गया। यह एक ऐसी उद्भावना है जो आज भी समस्त भारत में प्रचलित है। मध्ययुग में सूफियों ने इसका प्रचार बिहार में भी किया।

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

बिहार के सूफी संत सर्फुद्दीन अहमद मनेरी जिनका जन्म 1262 ई. में मनेर नामक स्थान में तथा मृत्यु 1377 ई. में बिहारशरीफ में हुआ एक भावुक हृदय के संगीत प्रेमी व्यक्ति थे। वे सोम गायन (धार्मिक, आध्यात्मिक गान) बड़े चाव से सुना करते थे। ये ऐसे मुस्लिम सूफी संत थे जो बिहार की भाषा एवं संगीत के बहुत करीब थे तथा संगीतकारों को प्रश्रय देते थे। ये कंठ-संगीत तथा यंत्र-संगीत दोनों का आनंद लेते थे। इसका जिक्र इनके शिष्य मुजफ्फर शम्स बाल्खी ने अपने मकतुबल के 121वें पत्र में किया है।

बाल्खी किसी हिन्दू योगी का उल्लेख करते हैं कि वह एकतारा लिये है जो मृगावती में उल्लिखित नाथ योगियों के किंगरी से भिन्न है। वह लिखते हैं कि एकतारा पर जब वह योगी हिन्दवी दोहा गाता है तो महान् सूफी-संत मुनेरी भाव-विभोर हो उठते हैं। दोहा है ''एकत कंडी विध भूतर भर के कायनचित किन मन रंझिया (या रझिया) मारन ततही नहाय''। सूफी संतों के संगीत से आत्मीय लगाव के अनेक दृष्टांत मिलते हैं। संत मनेरी 'सोम' धार्मिक गोष्ठियों एवं प्रवचनों में गाए जाने वाले भजन या आध्यात्मिक गान (गायन) बड़े चाव से सुनते थे। ये मुस्लिम सूफी-संत यहां की भाषा एवं संगीत के बहुत समीप थे और संगीतकारों को पूर्ण प्रश्रय प्रदान करते थे। कहते हैं, संत सर्फुद्दीन अहमद मनेरी की दरगाह पर तानसेन भी आए थे।

BIHAR NAMAN PUBLISHING HOUSE

बिहार के सांगीतिक घरानेः

बिहार में ध्रुपद की तीन परम्पराएं विकसित हुई जो बेतिया, दरभंगा और डुमरांव रियासतों के संरक्षण में फलती-फूलती रहीं। इनमें बेतिया घराना सबसे पुराना है जिसका उद्भव मुगल सम्राट शाहजहां के राज्यकाल में हुआ था।

मुगल साम्राज्य के पतन के साथ ही सेनिया ध्रुपदिये पूरब की ओर आकर विभिन्न रजवाड़ों के संरक्षण में बस गए। ऐसे रजवाड़ों में बेतिया, दरभंगा, डुमरांव, बनैली, टेकारी, गिद्धौर और तमकुही का विशेष योगदान रहा जिसने न केवल संगीतकारों को प्रश्रय दिया, वरन् इन राजघरानों के शासक स्वयं उच्चकोटि के संगीतकार भी हुए। बेतिया एवं दरभंगा का मल्लिक घराना आज दयनीय स्थिति में होते हुए भी ध्रुपद की वैभवशाली परम्परा को न केवल ढ़ो रहा है बल्कि इसका श्रीवर्द्धन भी कर रहा है। सेनिया परम्परा की दुर्लभ एवं बेमिसाल रचनाएं अमता (दरभंगा) एवं बेतिया के मल्लिक गायकों के पास आज भी मूल रुप में सुरक्षित है।

बिहार के संगीत के साथ सम्पूर्ण भारत की संगीत परम्परा में ध्रुपद गायन शैली का उद्भव हुआ। ध्रुपद गायन शैली, ग्वालियर के शासक राजा मानसिंह तोमर, बैजू बावरा, स्वामी हरिदास तथा तानसेन की बहुमूल्य थाती है। बिहार ही नहीं अपितु समस्त भारत की संगीत पद्धति में ध्रुपद गायन शैली का प्रमुख स्थान है। बिहार में गायन की अन्य शैलियां भी विकसित हुई है लेकिन शास्त्रीयता की दृष्टि से ध्रुपद शैली सर्वप्रमुख थी।

ध्रुपद गायन शैलीः-*ध्रुपद गायन शैली अत्यन्त धीमी होती है और उसी लय में समाप्त होती है, जिसमें शुरू होती है। ध्रुपद अत्यन्त गंभीर प्रकृति की गायन शैली है।*

ध्रुपद की वाणियां एवं उनकी विशेषताएं

1. गोबरहार वाणीः गउहरहार का तत्सम रूप ग्वालियरी वाणी माना जाता है, वस्तुतः इस वाणी की उत्पत्ति ग्वालियरी से हुई है एवं ग्वालियर में ध्रुपद में पहले गाई जाने वाली ढंग या शैली को ग्वालियरी कहा जाता था, वहीं ग्वालियर शब्द क्रमानुसार ग्वारियरी, ग्वारारी, गौरारी, गौरहारी तथा गउहरहार, गोबरहारी आदि हो गया। इस वाणी को कुछ लोग गौरहार, गोबरहार व गौड़बहार, गुबरहार आदि नामों से भी पुकारते हैं।

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

ऐसा कहा जाता है कि इस वाणी का प्रचलन ज्यादातर तानसेन एवं उनकी शिष्य परम्परा में रहा। इस वाणी को तानसेन द्वारा प्रचार में लाया गया।

गोबरहार वाणी को विशेषताएं: इस वाणी में आस एवं मींड की प्रधानता है। इस वाणी की पंक्तियों की तुलना में शब्द संख्या कम होने के कारण इसमें दो अक्षर या दो पदों के बीच के अंतर को मींड या आस से भरा जाता है एवं इस वाणी की स्वरावलियों में आवश्यक नियमानुसार मींडयुक्तता होने के कारण आवाज का निर्विरोध अटूट क्रम परिलक्षित होता है, यहां तक किसी मात्रा पर जोर देने का काम भी मींड द्वारा किया जाता है। इस वाणी में शांत, करूण, श्रृंगार व वीररस के ध्रुपद मिलते हैं जो प्रचलित और अप्रचलित तालों में निबद्ध होते हैं। इस वाणी का प्रधान गुण प्रसाद एवं वाणी शुद्ध मानी जाती है। स्पष्टता इसका प्रमुख लक्षण माना गया है।

2. डागरवाणी: इस शैली के प्रवर्तक राजपूताने के डागुर नाम स्थान के निवासी ब्रजचन्द माने जाते हैं, अनेक मतमतान्तरों के अन्तर्गत इस वाणी का नाम 'डागर' भी माना गया, जिसका अर्थ ''पंथ'' है उसी से डागर बन गया परन्तु किसी प्राचीन ग्रंथ में इसका उल्लेख नहीं है। कुछ मतों से ''डागर'' का अर्थ ''बड़ा'' अर्थात् श्रेष्ठ वाणी माना गया, किन्तु इसका भी उचित प्रमाण उपलब्ध नहीं है। अन्य मत से दिल्ली के पास ''डांग'' नामक जनपद था। ''डांग'' शब्द का अर्थ जंगल होता है यहां के लोग ''डागुर'' तथा उनकी भाषा ''डांगुरी'' नाम से प्रसिद्ध थी, आगे चलकर ''डांग'' और ''डांगुरी'' शब्द परिवर्तित होकर क्रमानुसार ''डाग'' और ''डागुरी'' और फिर बाद में ''डागुर'' हो गया।

डागरवाणी की विशेषताएं: इस वाणी के ध्रुपद में आस व मींड का काम कम होता है तथा यह विलम्बित एवं मध्य लय में गाया जाता है। अधिक मात्रा के तालों में यह वाणी गायी जाती हैं। शब्दों की बहुलता होने के कारण इसमें काव्य अभिव्यक्तिव्यंजक होता है। पहले इस वाणी में दुगुन, चौगुन, आड़, कुआड़ एवं विआड़ की लयकारियां नहीं की जाती थी। उस समय केवल अतीत, अनागत ग्रह और साधारण दुगुन तक ही सीमित थी। गत 50-60 वर्षों से इस वाणी में अन्य लयकारियों का प्रयोग होने लगा है। कुछ गुणीजनों का मानना है कि लयकारियों की सुविधा के कारण डागुर वाणी से ही धमार गायन शैली की सृष्टि हुई है। इस वाणी का प्रधान लक्षण सरलता व लालित्य है किन्तु गौड़वाणी की अपेक्षा सामान्यतया तिरछी गतियुक्त सरल है। एक स्वर से दूसरे स्वर में विचित्र व रहस्यात्मक ढंग से मिल जाता है। स्वर को स्पष्ट न लगाकर श्रोता की कल्पनानुसार लगाया जाता है। गंभीरता भी इस वाणी में पर्याप्त मिलती है। इस वाणी की गति शुद्धा व भिन्ना का मिश्र मानी जा सकती है।

3. खंडारवाणी: इस वाणी का प्रचार राजपूताना के खंडार नामक स्थान के निवासी नौबत खां द्वारा माना जाता है। राजपूताना खंडार नामक स्थान आज भी विद्यमान है। बादशाह बाबर ने जिस समय यहां का दुर्ग जीता था उस समय यह राणा सांगा के अधिकार में था। उस समय कई मुसलमान कलाकार यहां आकर बस गए थे। अत: वहां के स्थानीय संगीत के प्रस्तुतीकरण के ढंग तथा शास्त्रीय संगीत के संयोग से खण्डार वाणी का जन्म हुआ।

खंडारवाणी की विशेषताएं: यह वाणी ओज एवं वीरतापूर्ण मानी जाती है एवं इस कारण यह गमक-प्रधान वाणी है और तीव्र रसोद्दीपक है। कभी-कभी अन्य वाणियों की विशेषताएं भी इस वाणी में परिलक्षित होती है। इस वाणी में मध्यद्रुत व द्रुत लय मिलती है। इस वाणी में वीर एवं अदुभुत रस की प्रधानता है। इस वाणी में विलंबित मध्य व द्रुत त्रिविध आलाप बखूपी दिखाए जा सकते हैं। इस वाणी की गति भिन्ना व गौड़ी का सम्मिश्रण कही जा सकती है।

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

4. नौहारवाणी: इस वाणी के प्रवर्तक श्री चन्द्र थे जो नौहारी नामक स्थान के निवासी थे इसी स्थान के नाम पर इस वाणी का नाम ''नौहारीवाणी'' पड़ा। नौहार वाणी और उसकी भाषा क्रमानुसार नौहार व नौहारी वाणी कहलाती है। अभी भी नौहार की आंचलिक धुनों में छूट की प्रधानता पाई जाती है।

नौहारवाणी की विशेषताएं: यह छूट प्रधान वाणी है अत: एक मत से ''नौहार'' यानि सिहं की गति के साथ इस वाणी का सम्पर्क जोड़ते हैं पर इसका कोई स्पष्ट आधार नहीं मिलता है। इस वाणी के छूट के काम में एक स्वर से दो-तीन स्वरों को लांघकर परवर्ती स्वर पर पहुंचा जाता है। मध्य एवं मध्यद्रुत लय इस वाणी में उपर्युक्त है। मींड, आस, जमजमा, गमक एवं छूट इत्यादि अलंकारों का इस वाणी में अधिक संयोग होता है। अत: इस वाणी में अद्‌भुत रस की प्रधानता होती है। इस वाणी की बेसरा गीति से सम्बद्धता मानी जाती है।

बिहार के सुप्रसिद्ध ध्रुपद घराने

1. बेतिया घराना: मुगल दरबार के पतन के पश्चात् घरानेदार गवैये दूसरी रियासतों में आश्रय पाने लगे। कुरूक्षेत्र के निकटवर्ती ग्राम अमलोक के दो संगीतकार चमारी मल्लिक (गायक) और कंगाली मल्लिक (बीनकार) का दिल्ली दरबार में आना-जाना होता था, पर दरबार में किन्हीं कारणों से इन दोनों को सम्मान नहीं मिला। मुगल दरबार के इन महफिलों में बेतिया नरेश गजसिंह भी अक्सर शरीक होते थे। गजसिंह संगीत विशेषकर ध्रुपर-प्रेमी थे और अपने दरबार के लिए अच्दे ध्रुपदियों की तलाश में रहते थे। उन्होंने दोनों मल्लिकों को बेतिया लाकर अपना दरबारी नियुक्त किया। यहीं से बेतिया घराने का श्रीगणेश हुआ।

महाराजा गजसिंह के बाद बेतिया के शासकों में जुगलकिशोर सिंह (1762-85) संगीत प्रेमी हुए। जुगलकिशोर सिंह गजसिंह के पौत्र तथा ध्रुवनारायण सिंह के दौहित्र और पोष्यपुत्र थे। जुगलकिशोर ने स्वयं पखावज की शिक्षा ली थी। उनके दरबारी संगीतकारों के मुकंद मल्लिक (गायक) तथा जुमराज मल्लिक (बीनकार) के नाम उल्लेखनीय है। इनके वंशजों में दु:खी मल्लिक तथा भरथी मल्लिक आते हैं। दु:खी मल्लिक खंडारबानी ध्रुपद के सिद्ध गायक थे। इसी परम्परा में गोपाल मल्लिक हुए। इसी में बच्चा मल्लिक तथा उमा मल्लिक भी हुए। भरथी मल्लिक के भ्राता तपसी मल्लिक की वंश-परम्परा में बुधु मल्लिक के सुपुत्र कुंजबिहारी मल्लिक ने अपने समय में काफी प्रसिद्धि अर्जित की। जुगलकिशोर के पुत्र राजा वीरकिशोर सिंह (1785-1896 ई.) ने भी संगीत को पूरा सहयोग एवं संरक्षण प्रदान किया। उनके दरबार में पाण्ड मल्लिक एवं गुरू मल्लिक थे। उनके समय में सुदूर प्रांतों से ध्रुपदियो तथा पखावजियों का आगमन होने लगा। अनुमानत: सन् 1781-90ई. मे बनारस के पंडित शिवदयाल मिश्र नेपाल से बेतिया आए। इन्होंने महाराज आनंद किशोर तथा महाराजा नवलकिशोर को ध्रुपद का प्रशिक्षण दिया। इन दोनों राजाओं को ध्रुपद की चारों वाणियों की उत्तम शिक्षा मिली। उन्हें इस वाणियों में बंदिशों की रचना-पद्धति का भी पूर्ण ज्ञान था। इनके दरबार में पाण्डे मल्लिक तथा गुरू मल्लिक हुए।

बेतिया नरेशों में बेतिया घराने के सबसे सशक्त स्तम्भ महाराजा आनंदकिशोर सिंह (1816-38ई.) हुए। आनन्दकिशोर बेतिया घराना के आश्रयदाताओं तथा उन्नायकों में सिरमौर रहे। ये न केवल चोटी के गायक थे अपितु कुशल रचनाकार भी थे। उनके विषय में प्रसिद्ध है कि ये अपने आश्रित गायकों को पांच धमार की ''चीजों'' की तालीम देकर ही नित्य मुख-प्रक्षालन किया करते थे। उनके दरबार में विख्यात सेनिया उस्ताद प्यार खां और ताज खां आते रहते थे। कहते हैं, आनंदकिशोर प्यार खां के शागिर्द हो गए। मुगल सम्राट शाहआलम के जमाने में मुगल सल्तनत के पराभव काल में छज्जू खां खाबिया और ज्ञान खां तथा जीवन खां ध्रुपदिये जो सेनी

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

परम्परा के अंतिम सशक्त स्तम्भ माने जाते थे, बहुत विख्यात हुए। प्यार खां इन्हीं छज्जू खां के सुपुत्र थे ज्ञान खां नि:संतान थे। अत: बासत खां को पोष्य पुत्र के रूप में स्वीकार किया था। जाफर खां और बासत खां, प्यार खां के सहोदर थे जो रबाब सुरसिंगार तथा ध्रुपद में निष्णात थे। जाफर खां के सुपुत्र सादिक अली खां (बीनकार और रबाबी) लंबे समय तक बेतिया राजदरबार में रहे। यहीं से वे बनारस महाराज के दरबार में चले गए। आनंदकिशोर के दरबार में फकीर चंद मलिक मशहूर हुए। ये मल्लिक संगीतकार गौड़ ब्राह्मण एवं उनमें कुछ कथिक भी थे। अतएवं प्रमाणित तौर पर इनकी जाति निर्धारित करना कठिन है।

आनंदकिशोर के दरबार में हैदर खां सेनी भी जो प्यार खां के चचेरे भाई थे, आया-जाया करते थे। हैदर खां जीवन खां के सुपुत्र थे। इनके समय में फजल हुसैन खां नामक एक मशहूर ध्रुपद गायक हुए जिन्हें दरबार में प्रतिष्ठा मिली। फजल खां का निधन 1901ई. में हुआ। इनके सुपुत्र मेंहदी हुसैन खां थे, जिनका निधन 1922ई. में हो गया। फज़ल हुसैन के वंशज अपने को सेनिया कहते हैं। फज़ल हुसैन की पुत्री का विवाह काले खां से हुआ जो जिला अराई के ग्राम कोंच से बेतिया आए लेकिन मूलत: ये काल्पी (उत्तर प्रदेश) के रहने वाले थे। वीरेन्द्रकिशोर रायचौधरी तथा सुशीलकुमार चौबे प्रभृति संगीतमर्मज्ञ हैदर खां सेनी को बेतिया घराने का प्रवर्तक मानते है। परन्तु बेतिया घराना पहले ही स्थापित हो चुका था।

आनंदकिशोर के पश्चात् नवल किशोर (1833-55ई.) तथा राजेन्द्र किशोर (1855-83ई.) ने भी बेतिया घराने की श्रीवृद्धि में हाथ बंटाया। आनंदकिशोर की तरह नवल किशोर भी उच्च कोटि के ध्रुपदकार थे। उनके समय में गोपाल मल्लिक, बांके मल्लिक, गोरख मिश्र, कुंजबिहारी मल्लिक, फजल हुसैन, काले खां तथा मेंहदी हुसैन उच्च श्रेणी के ध्रुपदकार तथा बीनकारों से दरबार सुशोभित रहा। आनंदकिशोर तथा नवल किशोर के शिष्यों में बख्तावर जी, शिवनारायण जी, जयकरण मिश्र तथा गुरूप्रसाद मिश्र प्रमुख थे। इन सब में जयकरण मिश्र सबसे ज्यादा गुणी थे। ऐसा कहा गया है कि इन्हें 2000 ध्रुपद कंठाग्र थे। इनके प्रमुख शिष्यों में बनारस के भोलानाथ पाठक थे। शिवनारायण मिश्र के शिष्यों में विश्नाथ राव के शिष्य बेणमाधव मिश्र काशीनरेश के दरबारी गायक थे जिनका ध्रुपद सुनकर उस्ताद फैयाज खां इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने बनारस में कभी ध्रुपद नहीं गाने की प्रतिज्ञा कर ली।

कलकत्ता के जोड़ासांको निवासी ठाकुरों के दरबार में प्रसिद्ध संगीतकार श्यामनारायण मिश्र ने भी शिवनारायण जी से तालीम ली। बंगाल के ख्यातनामा ध्रुपदिया राधिकाप्रसाद गोस्वामी ने ध्रुपद की शिक्षा गुरूप्रसाद मिश्र से प्राप्त की। प्रसिद्ध संगीत-समीक्षक डॉ. धूर्जटी प्रसाद मुखर्जी के अनुसार अपने समय में गोस्वामी जी के पास ध्रुपद की बंदिशों का खजाना था। विष्णुपुर घराना के ध्रुपद गायकों में मुख्यत: बेतिया के ध्रपदियों के शिष्य रहे। इनमें विष्णुपुर घराना के गोपेश्वर बनर्जी, रामप्रसन्न बनर्जी, आशुतोष चटर्जी, बीनकार शिवेन्द्रनाथ बसु आदि प्रमुख थे। पश्चिम बंगाल में जो ध्रुपद गाये जाते हैं। उनमें 50% बेतिया घराना के हैं। डॉ. मुखर्जी के मतानुसार तत्कालीन बंगाल के ध्रुपदकारों में बेतिया घराना का प्रचुर प्रभाव रहा। ये ध्रपदिये गौरहार तथा खंडार बानियों के गायन में सुदक्षथे पर खंडारबानी में अधिक निपुणता प्राप्त थी। बेतिया के मल्लिक ध्रुपदियों में कीर्तिस्तम्भ कुंजबिहारी मल्लिक खंडारबानी के विशेषज्ञ माने जाते थे। सन् 1936 ई. में अखित भारतीय संगीत समारोह, मुजफ्फरपुर में इनका अभूतपूर्व गायन हुआ जिसकी पंडित ओंकारनाथ ठाकुर एवं अन्य संगीतकारों ने भरपूर सराहना की थी।

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

बेतिया घराने के ध्रपदियों की मुख्य विशेषताएं गुणीजनों द्वारा इस प्रकार बताई गयी है-

1. संक्षिप्त आलाप
2. बंदिश का गान (ताल में)
3. सम्पूर्ण गान में लय में कोई परिवर्तन नहीं, अर्थात् प्रारंभ, मध्य एवं अंत में लय का एक जैसा बर्ताव।
4. बोलबांट वर्जित
5. ख्याल की तरह विस्तार वर्जित
6. बंदिश या रचना में हेराफेरी किए बिना रागानुकूल गायन।

बेतिया घराना के ध्रुपदिये ध्रुपद को अचल पद मानकर तदनुसार गायन करते रहे।

बेतियाराज के महाराजा आनंदकिशोर द्वारा रचित ध्रुपद ग्रंथ ''दुर्गा आनंदसागर'' जीर्णावस्था में संरक्षित है। इस हस्तलिखित ग्रंथ में पौने दो सौ से भी ज्यादा विभिन्न रागों में ध्रुपदों की रचनाएं है। जिनमें पचास-साठ अप्रचलित रागों की बंदिशों जैसे-सुरह, शंख, लच्छासाख, देवसाख इत्यादि रागों में है। ऐसा कहा जाता है कि आनंदकिशोर की कुल रचनाएं चौदह सौ है और नवल किशोर की छः सौ। आनंदकिशोर द्वारा रचित एक ग्रंथ ''राग सरोज'' भी है जो अप्राप्त है। आंनदकिशोर की प्रांरभिक रचनाएं चार ताल के त्रिमात्रिक छंद में है किन्तु चौताल चर्तुमात्रिक छंद का ताल होने के कारण बाद में उनके संशोधित रूप मिलते है। अंतिम सेनिया उस्ताद मोहम्मद अली खां से प्राप्त ध्रुपदों में चर्तुमात्रिक छंद का प्रयोग है। चारों बानियों में प्रचलित प्रायः सभी तालों में निबद्ध ध्रुपद की बंदिशें केवल बेतिया घराना में उपलब्ध है। जैसे- चौताल, आड़ा-चौताल, त्रिताल, शिखर ताल, ब्रह्म ताल, रूद्र ताल, विष्णु ताल, गणेश ताल, सुलफाख्ता, झम्प ताल, तेवरा इत्यादि। इनमें से कई ताल जैसे-शिखर ताल, ब्रह्म, रूद्र विष्णु इत्यादि तालों की बंदिशें आजकल सुनने को नहीं मिलती है बेतिया के ध्रपुदिये अभी भी इन तालों में गाते हैं। इससे बेतिया घराने की उत्कृष्टता प्रमाणित होती है।

महाराजा आनंदकिशोर की रचनाओं की कुछ ध्रुपद इस प्रकार हैं:-

ध्रुपदः *राग सुरह-ताल मध्य गति झम्पताल*

''काली के पगन में लगन करो नर अधम
संगी के आन्वे ने जान्वे जगत में
भवसागर को चाहत तरण तो
प्राण करो रे पगन में शरण गुरू के मत में।
तनय है सपन निज नैनन सौं देखो अब
कपट तजि के जपहूं अध घटन पल में
पाल त्रिताप संताप सब छुटि गै
लह श्रीआनंद जप नाम चित्र में।।''

महाराजा नवल किशोर की रचनाओं की कुछ ध्रुपद इस प्रकार हैं-

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

ध्रुपद: *राग केदार-नट-ताल चौताल*

''काली पद-पंकज परसत
जनम-जनम को पाप ताप नाशत।
दुख दरिद्र-भन्जन, जो नाम करो बखान
जा लगि मुनिगण नित ध्यावत।
हो अधम जीवगण, काहे भूले काली नाम
कौन काम दिन काटत।
नवलकिशोर कहे रात, जो कालीनाम जपत
सो अमर पद पावत।''

नवल किशोर जी ख्याल की बंदिशें भी रचते थे। उनकी ख्याल रचना का एक उदहारण इस प्रकार है-

''पशुपति गिरिजापति हर शंकर अरधाङ्गी
वामदेव महादेव गंगाधर शिव पिनाकी
नवलकिशोर यह कीजिए कृपादृष्टि
भक्त युगल चरण को शंभू सहित श्रीभवानी।''

महाराजा नवल किशोर ने छ: पदों की होरियां भी रची। छ: पदोंवाली ये होरियां काशी के छोटे रामदास गाते है। बेतिया तथा काशी राजपरिवार में वैवाहितक संबंध था। अतएव काशी के संगीतज्ञों का आना-जाना बेतिया राजपरिवार में था। इस तरह काशी के संगीतकारों में इस होरी का प्रचलन हुआ।

बेतिया महाराजाओं में महाराज राजेन्द्र किशोर भी बंदिशों की रचना करते थे। इन राजाओं की ऐसी अनुपम रचनाओं की कुछेक मूल प्रतियां चोरी छिपे जापान जा चुकी है। बेतिया महाराज ही नहीं अपितु यहां की महारानियां भी ध्रुपद की रचना करने में सिद्धहस्त थीं। महारानी शिवतारा कुंवर का रचा ध्रुपद प्राप्त होता है जिसमें महादेव की स्तुति है।

बेतिया घराना के प्रारंभिक ध्रुपदियो में जुमराज मल्लिक का उल्लेख मिलता है। ये बेतिया नरेश जुगलकिशोर सिंह (1762-85ई) के दरबारी संगीतकार थे। आचार्य कैलाशचन्द्र देव बृहस्पति ने अपनी पुस्तक ''ध्रुपद और उसका विकास'' में कुछ अज्ञात-परिचय ध्रुपदकारों की रचनाएं प्रस्तुत की हैं जिनमें से एक जुगराज दास की रचना है। यह ध्रुपद कृष्णानंद के ''रागकल्पद्रुम'' में संग्रहित है। कृष्णानंद अपने समकालीन अनेक रिसासतों के राजाओं के सम्पर्क में आए थे। उन नरेशों की सूची भी उन्होनें दी है जिसमें बेतिया के नवलकिशोर का उल्लेख है। बेतिया के ध्रुपदकारों की रचनाओं में अधिकाशंत: काली या भगवती की स्तुती है। इसका मुख्य कारण यह है कि बेतिया के राजा शाक्त यानि काली के उपासक थे। अतएव आचार्य बृहस्पति जिस जुगराज दास और उनके रचित धुपद का उल्लेख करते हैं, बहुत संभव है कि ये बेतिया के जुमराज मल्लिक ही हो। उनका (जुगराज दास) ध्रुपद काली की ही वंदना है:-

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

सर्वाणी सर्वकलाशक्ति सारदा सरस्वती
श्यामा सुन्दरी सुखकरनी दुखहरनी।।
कामरूकमस्या कामदायिनी काली,
कल्याणी दुष्टहरनी।
कमलवदनी करणकारणी काश्मीररानी,
कैलासी काल हरनी।।
परमेश्वरी पार्वती परमपुण्यपावनी,
जुगराजदास श्यामवरनी महाकाली तरणतारनी।

ऐसी संभावना है। कि ''कल्पद्रुम'' के रचयिता कृष्णानंद को यह ध्रुपद बेतिया नरेश नवलकिशाोर से प्राप्त हुआ हो जिनसे संपर्क का वह अपने ग्रंथ में उल्लेख करते हैं। काशी नरेश बलबंत सिंह (1739–70 ई.) के दरबारी संगीतकारों में किसी जुगराज दास का उल्लेख डॉ. भानुशंकर मेहता अपने आलेख ''बनारसी संगीत और घराने'' में करते है। बेतिया के राजा जुगलकिशोर सिंह (जिनके दरबार में जुगराज मल्लिक थे) का समय 1762–85 ई. है। बनारस राज परिवार से बेतिया नरेशों का कौटुंबिक संबंध था। काशी के महाराजा ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह के दरबार में शिवनारायण मिश्र, गुरूनारायण मिश्र तथा बख्ताबरजी प्रभृति बेतिया दरबारमें ध्रुपदिये प्रतिष्ठित थे।

बेतिया घराने की वंश परम्परा के चिह्न स्वतंत्रता पश्चात् विद्यमान है। इन स्मृति चिन्हों में श्री महंथ मल्लिक बेतिया घराने की गायन परम्परा को बरकरार रखने के लिए जीवन–पर्यन्त प्रयत्नशील रहे। महाराजा आनंद किशोर तथा नवल किशोर बंदिशकारों की रचना, दुर्लभ ध्रुपद ग्रंथ, 'आनंद सागर' की मूल जर्जर प्रति महंथ मल्लिक के पास रही थी। इनके साथ ही स्मृति चिह्न के रूप में बेतिया के 'राज किशोर मिश्र मल्लिक' का नाम उल्लेखनीय है। ये 'स्व. पं. गोरख मल्लिक' के सुपुत्र है। इन्होंने पं. उमाचरण मिश्र मल्लिक से गायन की शिक्षा प्राप्त की। पं. राजकिशोर जी ने अनेक अखिल भारतीय संगीत सम्मेलनों में हिस्सा लेकर बेतिया घराने की ध्रुपद परम्परा के गौरव को बढ़ाया है। इन्हें 'चम्पारण रत्न' तथा 'अग्रगण्य कलाकार' के अलंकरण से सरकार द्वारा विभूषित किया गया है। आज भी पं. राज किशोर मिश्र मल्लिक के शिष्यगण बेतिया घराने की ध्रुपद परम्परा को बनाए रखा है।

वर्तमान में महाराजा आनन्द किशोर व नवल किशोर की शिष्य परम्परा में श्रीजयकरण मिश्र के शिष्य श्री भोलानाथ पाठक के शिष्य पं. शिवकुमार मित्रा चारों वाणियों के प्रकाण्ड पंडित थे जिनके पुत्र श्री फाल्गुनी मित्रा देश के प्रसिद्ध ध्रुपदियों में से एक है। जिन्होंने बेतिया घराने के निर्वाह के साथ ध्रुपद के सौन्दर्यात्मक तत्वों पर प्रगतिशील दृष्टि से विचार किया है। श्री फाल्गुनी मित्रा ने बचपन से ही संगीत के शिक्षा अपने स्व. पिता शिव कुमार मित्रा से प्राप्त की थी। ये एक रचनाशील गायक है तथा कई वर्षो से ध्रुपद गायन समारोह में अपनी प्रस्तुति दे रहे हैं।

श्री फाल्गुनी मित्रा की एक मौलिक रचना इस प्रकार है– **राग पूरिया कल्याण में निबद्ध** ''जय मान शंकर महादेव देवादिदेव त्रिपुरारी'' अत्यन्त लोकप्रिय है।

वर्तमान में बेतिया में श्री महावीर प्रसाद नामक एक उच्चकोटि के ख्याल गायक है, जो बेतिया सहित नेपाल

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

के बीरगंज इत्यादि क्षेत्रों में संगीत-शिक्षा के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं।

बेतिया घराने की विशेषताएं

- इस घराने में आवाज का प्रयोग पूर्णतः खुला हुआ, बलपूर्ण दमखमयुक्त, ओजपूर्ण ठहरावयुक्त अर्थात् सांस के स्थैर्य से युक्त है।
- इस घराने के आलाप ज्यादा विस्तृत नहीं होते, राग के स्वरूप की स्पष्टता पर अधिक बल दिया जाता है। आवाज में आस, मींड व सांस की प्रधानता के साथ आवाज का क्रम बनाए रखा जाता है। मींड का प्रयोग हल्के बल अथवा गमक से प्रारंभ किया जाता है। कण एवं गमक का प्रयोग भी बहुधा किया जाता है।
- इस घराने में बंदिश अर्थात ध्रुपद के पद पर विशिष्ट जोर दिया जाता है। सम्पूर्ण पद में राग के मुख्य स्वरूप की स्पष्ट अभिव्यक्ति की जाती है।
- इस घराने में ध्रुपद व धमार की प्रायः चारों तुकें परिलक्षित होती है। लय का वर्ताव एक सा रहता है।
- इस घराने के पद के साहित्य की विशेषता है कि पद अधिकतर काली या देवी स्तुति से परिपूर्ण एवं भक्तिप्रधान हैं एवं ध्रुपद की चारों बानियों के ध्रुपद इसी घराने में ही गाते हुए सुने जाते हैं। ध्रुपद की लयकारी पक्ष को देखने से ज्ञात होता है कि बोल और बेत इस घराने में वर्जित है।
- इस घराने में लय विभिन्नता एवं लयक्लिष्टता ज्यादा नहीं प्रदर्शित की जाती है। तिहाई का प्रयोग भी लय के बर्ताव के अनुकूल प्रयुक्त होते हैं, लयकारियां संक्षिप्त एवं कम गाते हैं।

बेतिया घराने में उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर खण्डार व गोबरहार का सम्मिश्रण माना जा सकता है। यद्यपि इस घराने में चारों वाणियों के ध्रुपद प्राप्त होते हैं। यह अत्यंत दुख की बात हैं कि आज बेतिया घराना लुप्त होता जा रहा है क्योंकि आज इस घराने के कुछ गिने-चुने कलाकर ही विद्यमान है। अतः इस घराने को भरपूर सहयोग प्रदान करना तथा बेतिया घराने का संरक्षण, सवर्द्धन इस घराने के गायकों, संगीत-संस्थाओं एवं सरकार इत्यादि के लिए अत्यन्त विचारणीय एवं आवश्यक है।

2. दरभंगा घरानाः दरभंगा घराना के मल्लिक ध्रुपदियों में क्षितिपाल मल्लिक, रामचतुर मल्लिक एवं सियाराम तिवारी अत्यन्त ही प्रभावशाली गायक हुए है। दरभंगा के मल्लिक गायकों में रामचतुर मल्लिक (1905-90) का जन्म अमता ग्राम में हुआ था। वर्तमान समय के ध्रुपद गायकों में इनका नाम सर्वश्रेष्ठ है। डागर घराने के गायक भी इनके गायन का लोहा मानते थे। इनके पास ध्रुपद की पुरानी बंदिशों का खजाना था। इनकी आवाज दमदार पर माधुर्यपूर्ण तथा पाटदार थी। ध्रुपद की पुरानी परंपरा के अनुकूल बंदिश के चारों तुकों के रख-रखाव, राग की शुद्धता तथा लय की उन्नत सूझ-बूझ के साथ इनका गायन भावानुकूल होता था। वर्तमान 21वीं सदी में उस्ताद फैयाज खां के बाद रामचतुर मल्लिक ही चारों पाटों के कुशल गायक हुए। ये ठुमरी, टप्पा तथा ख्याल गाने में भी कुशल थे। इनके गायन के रिर्कार्ड फ्रांस तथा जर्मनी में बनाए गए है। एच.एम.वी. कम्पनी ने भी इनका लॉग प्ले रिकॉर्ड बनाया है। रामचतुर मल्लिक जी को ''केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी अवार्ड'' तथा ''पद्मश्री'' की उपाधि से भी विभूषित किया गया है। खैरागढ़ संगीत विश्वविद्यालय द्वारा मल्लिक जी को ''डाक्टरेट'' की उपाधि से सम्मानित किया गया।

दरभंगा घराना के अन्य गुणियों में महावीर मल्लिक, यदुवीर मल्लिक तथा विदुर मल्लिक भी अत्यन्त प्रमुख रहे। इनके पास भी ध्रुपदों का भंडार था। दरभंगा घराने के ध्रुपद गायको के नायक क्षितिपाल मल्लिक थे। क्षितिपाल मल्लिक के पूर्वज धनगाई (रोहतास)के थे। धनगाई के माणिकचंद, अनूपचंद, ज्ञानचंद और वाटूरचंद-

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

इन चार भाईयों में माणिकचंद की वंश-परम्परा में क्षितिपाल मल्लिक का जन्म तेरहवीं पीढ़ी में हुआ था। माणिकचंद के पुत्र हस्तिराम और मस्ताराम अपने समय के श्रेष्ठ ध्रुपद गायकों में थे। क्षितिपाल मल्लिक के पूर्व पुरूष महाराजा दरभंगा के आमंत्रण पर दरभंगा आए एवं मिश्र टोला में बस गए। बाद में अमता के निकट ग्राम गंगदह में बस गए। क्षितिपाल मल्लिक महाराजा लक्ष्मीश्वर सिंह तथा उनके पिता महाराजा गणेश्वर सिंह के समय से ही दरबारी गायक के रूप में प्रतिष्ठित रहे। अमता घराना के समस्त ध्रुपद गायक यानि राजितराम मल्लिक, रामचतुर मल्लिक आदि सभी उनकी शिष्य परम्परा में आते हैं। क्षितिपाल मल्लिक के ज्येष्ठ पुत्र नरसिंह मल्लिक की असामयिक मृत्यु हो गयी। क्षितिपाल मल्लिक के द्वितीय एवं तृतीय पुत्र महावीर तथा यदुवीर मल्लिक की गणना दरभंगा घराना के श्रेष्ठ ध्रुपद गायकों में होती है। यदुवीर मल्लिक का जन्म 10 फरवरी, 1909 ई. को गंगदह में हुआ था। उनके ज्येष्ठ भ्राता महावीर मल्लिक रामचतुर मल्लिक से उम्र में दो वर्ष बड़े थे। 1936 ई. में दोनों भाइयों का युगल गान इतना प्रभावोत्पादक रहा कि उस समारोह में उन्हें ''संगीताचार्य'' की उपाधि से विभूषित किया गया। 1929 ई. में विक्टोरिया हॉल, दरभंगा में आयोजित संगीत जलसा में पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने उनका गायन सुनकर कहा था कि ''बिहार की मिट्टी में भी संगीत की आत्मा इतनी सजी है, इसका उन्हे अनुमान न था।'' क्षितिपाल मल्लिक तथा इसके द्वितीय पुत्र महावीर मल्लिक कुशल रचनाकार भी थे। इनके द्वारा रचे गए ध्रपदों के कुछेक उदाहरण इस प्रकार हैं-

ध्रुपदः *राग-खमाज-ताल चौताल*

''आली री तू अंग-अंग रंग रानी सूरत सयानि पिय
जिय मनमानी री।
सोलह कला सयानि बोलत वानी तेरी छवि
देखियत चन्द्र हूं लजानी री।
कटि केहरि केदली जंघ नासिका है कीर जाको।
श्रीफल सरोजन की यैसी छबि खानी री।
कहैं गुनि 'क्षितिपाल'' चिरंजिवि रहौ तो लो गंगाजी से पानी री।।

ध्रुपदः *राग देस-सिन्धुरा (ताल-चौताल)*

''आज आई धाई उमड़-घुमड नव किशोरी गोरि-मोरि
होरी खेल मदन मोहन लाल संग ये।
डफ मृदंग घन घोर-घोर सोई सराबोर केसर गुलाल
श्याम रंग ये।।
लुकत झुकत अलबेलि झनक मनक कनक रंग झटपट
लपटाय श्याम तरू तयाल अंग ये।
जप तप व्रत ध्यान धरत मुनिगन वेद भेद न पाव प्रेम
रस बस भये ''महावीर'' ढंग ये ।।''

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

सियाराम तिवारी जी भी दरंभगा घराना के उद्भट ध्रुपद गायकों में गिने जाते थे। इनका जन्म अमता में 1919 ई. में हुआ। लयकारी पर इन्हें आसाधारण अधिकार प्राप्त हुआ था। अच्छे से अच्छे तैयार पखावजी भी इनकी गायकी के समक्ष नतमस्तक रहते थे। बुलंद एवं सुरीली आवाज के धनी सियाराम तिवारी जी की गणना देश के शीर्षस्थ ध्रपदियों में की जाती है। एच.एम.वी. ने इनका भी लॉग प्ले रिकॉर्ड बनाया है। देश-विदेश में इन्हें सम्मान प्राप्त हो चुके हैं जिनमें ''पदमश्री'' तथा ''केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी'' की ''रत्न सदस्यता'' प्रमुख है।

दरभंगा के मल्लिक ध्रुपदियों की परम्परा अत्यन्त पुरानी है। मल्लिक घराने के पूर्व पुरूषों में राधाकृष्ण एवं कर्ताराम दो भाई हुए जिन्होंने ध्रुपद की शिक्षा भूपत खा महारंग से लगभग 30 वर्षो तक पायी। राधाकृष्ण तथा कर्ताराम दोनों भाई मिथिला नरेश माधव सिंह (1775/1776-1807ई.) के आश्रय में पश्चिम से आए थे। कतिपय विद्वानों का मत है कि पहले अवध दरबार में मुलाजिम थे। लेकिन कुछ लोग इन्हें पटना के नवाब के आश्रित मानते हैं।

ऐसा कहा जाता है कि इन दोनों भाइयों ने अपनी तालीम समाप्त करने के उपरांत पटना के नवाब का आश्रय प्राप्त किया। दरभंगा महाराज माधव सिंह इनके संगीत से इतने प्रभावित हुए कि इन्हें अमता ग्राम की जागीर प्रदान कर दी थी। जागीर के रूप में इन्हें अमता ग्राम में लगभग 1200 बीघा जमीन एवं अमता गंगदह और नारायण दोहट इन तीनों गांवों की मिल्कियत प्राप्त हुई। कालान्तर में ये दोनों भाई स्थाई रूप से एकमात्र दरभंगा दरबार के गायक नियुक्त कर दिए गए। तभी से इस परम्परा के सभी संगीत-कलाकारों को वंशानुगत रूप से दरबार की ओर से आश्रय प्राप्त होता रहा। राधाकृष्ण एवं कर्ताराम की मृत्यु के बाद उनके वंशज अपनी जागीर के क्षेत्र अमता (विष्णुगांगी) में रहने लगे।

दरभंगा घराने में ध्रुपद गायन के साथ बीन एवं पखावज वादन की परम्परा भी रही है। इसमें आजकल बीन का प्रचार नहीं होता है एवं इस घराने की प्रसिद्धि विशेष रूप से ध्रुपद-गायकी के क्षेत्र में ही हुई है। इस परम्परा का हस्तान्तरण मुख्य रूप से वंशानुक्रम रूप में ही हुआ है। परम्परा के विशिष्ट कलाकारों में धर्मपाल (ध्रुपद), निहाल सिंह (बीनकार), क्षितिपाल (ध्रुपद गायक), राजितराम (ध्रुपदगायक), बाबू बेनी सिंह (ध्रुपद गायक), भीम मल्लिक (पखावजी), बिसन देव पाठक (पखावजी), देवकी नन्दन पाठक (पंखावजी) के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें से धर्मपाल जी अपनी गंभीर गायकी तथा आलाप के लिए प्रसिद्ध थे।

राजितराम गायक होने के साथ पद रचना भी स्वयं करते थे। ये बृज एंव संस्कृत के विद्वान थे तथा फारसी भी जानते थे। उन्होंने ''भक्त विनोद'' तथा ''राग रत्नाकर'' नामक पुस्तकें भी लिखी है। बाबू बेनी सिंह (नूनू बाबू) घराने में अपनी पल्लेदार आवाज के लिए प्रसिद्ध रहे। उनकी रचनाओं में भक्ति पक्ष का प्राधान्य माना जाता था। ये काफी विलम्बित लय में गाते थे। यह बराबर या दुगुन की लय में ही लयकारी करते थे एवं गमक का प्रयोग सर्वत्र बाहुल्य के साथ करते थे। गमक की बांट की दृष्टि से क्षितिपाल जी के बाद उन्हीं का स्थान माना जाता है। इनके पास विभिन्न रागों और तालों के पदों का अच्छा संग्रह था।

इस प्रकार दरभंगा के अमता घराने के मल्लिक ध्रुपदियों में रामनेवाज, सीताराम, राधाकृष्ण, कर्त्ताराम, भीम, मल्लिक, गजराज मल्लिक, लोचन मल्लिक, कन्हैयालाल नेहाल, राजाराम राजितराम मल्लिक, रामचतुर मल्लिक, रामेश्वर पाठक, विदुर मल्लिक, सियाराम तिवारी, अभय नारायण मल्लिक का नाम प्रसिद्ध हुआ।

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

दरभंगा घराने की विशेषताएं

- दरभंगा घराने की गायकी अपने दमखम एवं जोशीली गायकी के कारण ध्रुपद क्षेत्र में अपनी अलग पहचान रखती है। इस घराने की आवाज, लगाव का ढंग अत्यन्त बलपूर्ण, जोरदार, ठोस, पाटदार खुला हुआ, गंभीर एवं तीखी जवारीयुक्त एवं ओजपूर्ण युक्त होता है। आवाज में मींड़ एवं आस की प्रधानता रहती है एवं आवाज में खुलेपन के साथ मींड़ एवं घसीट का प्रयोग बहुतायत किया जाता है। मींड व घसीट के कारण आवाज का निर्विरोध प्रयोग किया जाता है।
- इस घराने की गायकी में स्पष्टता एवं शुद्धवाणी का प्रयोग होता है। आवाज का लगाव बलपूर्वक होने के कारण आलापों में आवाज का प्रयोग करने से प्रारंभ में हल्ली गमक अथवा बल से एक छोटी तान या खटके का प्रयोग बारीकी से देखने में परिलक्षित होता है। इसलिए मींडों का प्रयोग बलपूर्ण छूट एवं हकार अथवा हुडक के साथ किया जाता है। छूट का काम भी बलपूर्ण ढंग से बहुतायत रूप से ही प्रयुक्त होता है। स्वर की लोट-पलट काफी देखने को मिलती है।
- इस घराने की गायकी चतुरंग अर्थात् चारों पाटों की गायकी अर्थात् ध्रुपद, धमार, ख्याल ठुमरी की मानी गई है। ध्रुपद गायकी को ईश्वर आराधना मानते हुए भी इस घराने की गायकी जोशीली होने के कारण उसमें भक्ति व शांत रस की अपेक्षा ओज गुण व वीररस का ज्यादा आधिपत्य प्रतीत होता है।
- इस परम्परा में कुछ ऐसे रागों का प्रचार भी रहा है जो अन्यत्र प्राप्त नहीं है जैसे- श्वेत मल्हार, विनोद, खमाज बहार, प्रमोल तथा प्रदौल।
- इस परम्परा में पहले भैरव के स्वरों से प्रशिक्षण प्रारंभ होता था, किन्तु अब बिलावल की एवं यमन की स्वरावलियों से होता है। स्वर ज्ञान हेतु प्रारंभ में वर्षो तक एक-एक स्वर के सीधे प्रयोग पर बल देते हैं एवं साथ ही पलटे भी सिखाए जाते है। ध्रुपद-धमार की दृष्टि से यह घराना बहुत समृद्ध माना जाता है।
- पदों का गायन भी खुली आवाज एवं दमखम के साथ किया जाता है। पद ज्यादा स्तुतिपरक होते है। पदगायन में आवाज का क्रम टूटता नहीं हैं एवं मीड़ों, कणों के साथ गमक-युक्त आवाज के साथ पदगायन होता है। ध्रुपद की लयकारियां जितनी अनुशासित एवं गतिबद्ध होती है उतनी अन्य घरानों की नहीं।
- इस घराने के गायक दुगुन से सोलहगुन या इसके समकक्ष लय के प्रयोग को ही विभिन्न मात्राओं से उठाकर विविध आयामी लयकारी का प्रयोग अत्यन्त कुशलतापूर्वक रूप से प्रस्तुत करते है। लयकारी प्रयोग में बोलोच्चार इतना स्पष्ट होता है कि उसमें छंदों को स्पष्ट देखा जा सकता है।
- इस घराने की एक निराली विशेषता यह है कि अन्य घरानों से अलग इस घराने में लयकारी के बाद कभी सम पर सीधे पहुंचने पर गायक का आग्रह नहीं रहता अपितु नई-नई तिहाइयों का प्रयोग प्रायः इस घराने के सभी गायक करते हैं। इन तिहाइयों की खास विशेषता यह है कि ये तिहाईयां छोटी होने की अपेक्षा बहुधा लम्बी, चक्करदार व तीन आवृत्ति (नवहक्का) युक्त होती है।
- इस घराने के गायक इन तिहाईयों के बाद प्रायः कुशलतापूर्वक ढंग से सम-विषम, अतीत-अनागत इत्यादि का प्रयोग दिखाते हैं।

उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर इस घराने में प्रधानतया खण्डार वाणी के दिग्दर्शन होने के साथ ही कभी-कभी गोबरहारी वाणी का सहयोग भी लिया जाता है।

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

3. धनगाई घराना (डुमरावं घराना): रोहतास जिला का धनगाई ग्राम कई सदियों से ध्रुपद गायकों की जन्मभूमि रहा। यहां की संगीत परम्परा के आदिपुरूष पंडित ज्ञान दूबे हुए। इसी धनगाई ग्राम में पंडित घनारंग दुबे का जन्म 1819 ई. में हुआ। उनके पिता का नाम तिलक दुबे था। घनारंग जी इस सांगीतिक परम्परा के संभवत: श्रेष्ठतम व्याख्याता हुए। संगीत का प्रशिक्षण उन्हें अपने चाचा पंडित माणिकचंद और पंडित अनूपचन्द्र से प्राप्त हुआ। अनूपचंद्र संगीतज्ञ के साथ ही उच्चकोटि के विद्वान थे। अतएव संगीत और साहित्य घनारंग जी को विरासत में प्राप्त हुआ। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। जहां एक ओर उन्होंने शास्त्रीय संगीत की गायन-विद्या में उच्चकोटि में सिद्धि पायी, वहीं दूसरी ओर भावपूर्ण पदों की रचना भी की। घनारंग डुमरांवराज (वर्तमान भोजपुर जिला) के दरबारी गायक के रूप में प्रतिष्ठित रहे। अपने आश्रयदाता डुमरांव नरेश महेश्वरबक्श सिंह बहादुर के आग्रह पर इन्होंने ''कृष्णायन'' नामक ग्रंथ का प्रणयन किया। पंडित घनारंग ने ध्रुपद, धमार, चतुरंग, सरगम, सार्थक तराना, भूला, होरी आदि सैकड़ों रचनाएं कीं। उनकी ये रचनाएं संगीत और साहित्य दोनों की अनूठी धरोहर है। प्राचीन परम्परानुकूल साहित्य और संगीत का अनूठा समन्वय तथा कई आवृतियों के सरगम की बंदिशों का गायन घनारंग के घराने की विशेषता है।

घनारंग डुमरांव राजदरबार से संबद्ध रहे, अतएव उनका घराना डुमरांव घराना कहलाया। वो नि:संतान थे अत: उन्होंने अपने शिष्यों को ही पुत्रवत संगीत-प्रशिक्षण प्रदान किया। उनके शिष्यों में सर्वश्रेष्ठ पंडित बच्चू दुबे थे। बच्चू दुबे का जन्म 1927 ई. में धनगाई में हुआ। उनके पिता का नाम पदारथ दुबे था। बच्चू दुबे बेतिया के दु:खी मल्लिक के समकालीन थे। उन्हे अपने दादा माणिकचंद्र से भी मार्गदर्शन मिला। संगीत में उनकी विलक्षण दक्षता से मुग्ध होकर तत्कालीन डुमरांव महाराज जयप्रकाश सिंह ने उन्हें अपने दरबार में प्रतिष्ठित किया। ध्रुपद-धमार जैसी गंभीर गान-विद्या को भी बच्चू दुबे इनती सरसता से प्रस्तुत करते थे कि सामान्य श्रोता भी मंत्रमुग्ध हो उठते थे। डुमरावं के लोग उन्हें ''तानसेन'' कह कर आदर देते थे। बच्चू दुबे ''प्रकाश'' उपनाम से सांगीतिक रचनाएं करते थे। बच्चू दुबे द्वारा रचित चार पुस्तकें इस प्रकार है- सुरप्रकाश, रसप्रकाश, संगीतप्रकाश, और भैरवप्रकाश। इन पुस्तकों में से केवल भैरवप्रकाश ही प्रकाशित हुई है।

पंडित बच्चू दुबे के शिष्यों में ईशरपुर (गया) के सुविख्यात सितारवादक पंडित सुदीप पाठक, भड़सर (बलिया) के विश्वनाथ पाठक, जैमिनी पाठक, धनगांई के रघुनंदन दुबे और सहदेव दुबे प्रमुख थे। ऐसा कहा जाता है कि सितारवादक सुदनी पाठक ही भारतविख्यात सितारिया पंडित रामेश्वर पाठक की प्रेरणा-स्रोत थे। पंडित विश्वनाथ पाठक एक कुशल गायक थे। इनके गायन से प्रभावित होकर पंचगछिया रियासत के रायबहादुर लक्ष्मीनारायण सिंह ने इन्हें अपने दरबार में प्रतिष्ठित किया था। कहते हैं कि रायबहादुर के संगीतगुरू पाठक जी ही थे।

सहदेव दुबे के पांडित्य का लोहा उनके समकालीन जाने-माने संगीतकार तक मानते थे। इनका जन्म 1892 ई. में हुआ। संगीत की प्रारंभिक शिक्षा उन्हें अपने पिता पंडित मुकुटधारी दुबे से प्राप्त हुई। दरभंगा के दरबारी गायक पंडित क्षितिपाल मल्लिक तथा राजितराम मल्लिक से भी उन्हें मार्गदर्शन प्राप्त हुआ लेकिन उनकी प्रतिभा का परिष्कार पंडित बच्चू दुबे की देखरेख में हुआ। कालक्रम से सहदेव दुबे घनारंग के घराने के प्रतिनिधि गायक बन गये। उनके प्रशंसकों में राजा भैया पूंछवाले तथा कृष्ण राव शंकर पंडित सरीखे हिन्दुस्तानी संगीत के दिग्गज गवैये थे। सहदेव दुबे आजीवन सूर्यपुरा इस्टेट (रोहतास जिला) के दरबारी संगीतकार रहे। संगीत-शास्त्री आचार्य बृहस्पति उन्हें ''भारतीय संगीत का कोश'' कहते थे।

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

पंडित रामप्रसाद पाण्डे का जन्म 1901 ई. में ब्रह्मपुर (आरा) ग्राम के संगीतकारों के परिवार में हुआ था। उनके पिता शिवजतन पाण्डे कुशल सितारवादक थे। इनके चाचा रामजतन पाण्डे गायक थे। इनके मामा रामगोविन्द पाठक सुप्रसिद्ध सितारवादक थे। अतः रामप्रसाद जी की तालीम अपने चाचा एवं मामा दोनों से हुई। तीसरे-चौथे एवं पांचवे दशक में बिहार में जितने भी अखिल भारतीय स्तर के संगीत समारोह हुए, उनमें रामप्रसाद पाण्डे ने बिहार का प्रतिनिधित्व किया। 1936 ई. में मुजफ्फरपुर में आयोजित अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन में उन्हें सुनकर कवि गुरू रविन्द्रनाथ ठाकुर ने मंच पर जाकर उनकी प्रशस्ति में काव्य पाठ किया था। इस आयोजन की अध्यक्षता रवीन्द्र नाथ टैगोर ने ही की थी। समारोह के दूसरे दिन की अध्यक्षता पंचगछिया के कला-पोषक सामंत रायबहादुर लक्ष्मीनारायण सिंह ने की थी। आचार्य बृहस्पति ने भी इन्हें उच्चकोटि का ध्रुपद गायक बताया है। रामप्रसाद पाण्डे सुकंठ गायक थे। ये ख्याल एवं ''छोटी चीजें'' गाने में भी माहिर थे। स्वरों के मनोहारी विस्तार से रागों का आकर्षक चित्रांकन तथा लय की सुकुमारिता की सुरक्षा इनकी गायकी की लाक्षणिक विशेषता थी।

इस प्रकार इस घराने के अनेक वंशज कलाकार हुए जिन्होंने आधुनिक काल में बिहार में अत्यन्त ख्याति प्राप्त की और संगीत के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। धनगाई घराना अथवा डुमरांव घराना का बिहार नही नहीं वरन् पूरे भारतवर्ष में ध्रुपद गायनशैली के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। इस घराने का ध्रुपद गायन बेजोड़ था। धनगाई घराना को डुमरांव घराना के नाम से भी जाना जाता है क्योंकि डुमरांव धनगाई इन दोनों ही गांवों में विद्वान-गायकों का घर रहा है। धनगाई ग्राम की मिल्कियत भी डुकरांव नरेश द्वारा की गई थी। डुमरांव घराने की वंश परम्परानुकूल अगली पीढ़ी में भी अनेक गायक-विद्वान हुए और इन विद्वानों की शिष्य परम्परा में अनेक उच्च कोटि के ध्रुपद रचनाकार भी हुए।

4. पंचगछिया घरानाः इस घराने के संस्थापक पंचगछिया के एक कुशल जमींदार तथा ध्रुपद-धमार के महान विद्वान स्व. पं. प्रियव्रत नारायण सिंह हुए। वे संगीत के प्रति समर्पित व्यक्ति थे तथा उच्च कोटि के ध्रुपद गायक होने के साथ ही ध्रुपद के कुशल वाग्येकार भी थे। इनके दरबार में अनेकों गायकों-वादकों को संरक्षण प्राप्त था। पं. प्रियव्रत नारायण सिंह के बाद इनके पुत्र पं. लक्ष्मी नारायण सिंह तथा पं.ब्रह्मदेव नारायण सिंह ने पं. नारायण सिंह द्वारा चलाई गई घरानेदार परम्परा को बरकरार रखा।

पंचगछिया के सामंत रायबहादुर लक्ष्मीनारायण सिंह न केवल संगीत पारखी थे अपितु पखावज बजाने में अपनी खास जगह रखते थे। रायबहादुर लक्ष्मीनारायण सिंह का जन्म 1882 ई. में पंचगछिया के जमींदार प्रियव्रत नारायण सिंह के यहाँ हुआ था। पंचगछिया रिसासत में संगीत की परम्परा पुरानी थी। लक्ष्मीनारायण जी के पितामह रूद्रनारायण सिंह मिथिलांचल के कोशी क्षेत्र के महान् संत लक्ष्मीनाथ गोसाई के समकालीन थे। वह स्वयं भजन रचते थे व उसे स्वरबद्ध कर गाया करते थे। इस प्रकार लक्ष्मीनारायण जी को संगीत का संस्कार वंशानुगत प्राप्त हुआ था।

पंचगछिया जैसे ग्रामीण अंचल को संगीतमय बनाने का पूरा श्रेय वहां के सामंत रायबहादुर लक्ष्मीनारायण सिंह को है। यों तो देश में एक से बढ़कर एक रजवाड़े थे। बिहार में ही बेतिया, गिद्धौर, दरभंगा और टेकारी रिसासतें थी जो संगीतकारों के संरक्षण के लिए विख्यात थी लेकिन बनैली इस्टेट के कुमार श्यामनंद सिंह (जो स्वयं कुशल संगीतकार थे) के शब्दो में ''पंचगछिया'' एक छोटी जमींदारी अवश्य थी, लेकिन वहां के सामंत लक्ष्मीनारायण सिंह ने संगीत की जैसी उत्कृष्ट सेवा की उसे दुर्लभ ही नहीं अनुकरणीय भी कहा जाएगा। रायबहादुर के संगीत-ज्ञान तथा अनुभव के उनके समकालीन सभी संगीतकार प्रशसंक रहे।

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

इनके शिष्यों में सभी जाति और वर्ग के लोग थे। उन्होंने संगीत की शिक्षा देने में किसी प्रकार का जातिगत भेदभाव नहीं अपनाया। इसका ज्वलंत प्रमाण, रायबहादुर जी का निजी चाकर मांगन खवास जो जाति के धानुक (एक छोटी जाति) थे। इनकी संगीत प्रतिभा को परखते हुए इन्हें एक अद्वितीय गायक बना दिया। रायबहादुर जी के दरबार में संगीत का आंनद लेने के लिए हर किसी को प्रवेश का अधिकार था। फलतः पंचगछिया और आसपास के इलाके में संगीत के अच्छे श्रोता तैयार हुए। संगीत वहां की मिट्टी में रच बस गया।

5. चम्पानगर घराना: पंचगछिया घराने की ही तरह सहरसा (बिहार) के आंचलिक ग्रामीण क्षेत्र में ''चम्पानगर ड्याढ़ी'' नामक एक छोटी सी जमींदारी थी। बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में वहां के जमींदार तथा सुविख्यात संगीतविद् स्व. श्रीयुत कुमार श्यामानन्द सिंह थे। बींसवी सदी के पूर्वार्द्ध में उन्होंने इस घराने की स्थापना की। स्व. कुमार श्यामानन्द सिंह जहां एक ओर कुशल जमींदार थे वहीं एक कुशल संगीत साधक, संगीत संरक्षक एवं संगीत के संवर्द्धक भी थे। वे स्वयं शास्त्रीय गायन के साथ-साथ हारमोनियम वादन में भी सिद्धहस्त थे। इनके पास प्रचलित तथा अप्रचलित रागों का भंडार था। साथ ही प्रत्येक राग में अनेकों बंदिशों का खजाना था, जो कठिन तालो में निबद्ध थे। उन्होंने नई गायन-शैली की स्थापना करते हुए अपने दरबार के गायकों तथा अपने शिष्यों को उस शैली की शिक्षा दी जिसे ''चम्पानगर ड्योढी घराना'' का नाम दिया जा सकता हैं। इस घराने की बंदिशें बड़ी ही विद्वतापूर्ण होती है तथा गायकी में माधुर्य पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

अपने जीवन काल में कुमार श्यामानंद जी ने अनेक शिष्यों को संगीत शिक्षा प्रदान की। उनके शिष्यों में स्व. पं. सीताराम झा (बनगांव) पं. भोला मिश्र का नाम उल्लेखनीय है। इन दोनों शिष्यों ने इस घराने की वंश–परम्परा को आगे बढ़ाते हुए कई शिष्यों को संगीत शिक्षा प्रदान की, जिनमें सावित्री रेणु झा, चन्द्रशेखर झा, संजय कुमार ठाकुर (पंचगछिया), दैया झा (बनगांव) तथा श्रीमती जूली कुमारी (बनगांव) का नाम उल्लेखनीय है।

6. पंचोभ घराना: पंचोभ घराने का इतिहास भी काफी प्राचीन रहा है। परन्तु श्रृंखलाबद्ध सामग्री के अभाव में इस घराने पर प्रकाश डालने में कठिनाई हो रही है। इस घराने के संस्थापक एवं जनक के रूप में श्री अवध झा का नाम बड़े ही आदर के साथ लिया जाता है। ये बिहार अन्तर्गत मिथिला के लोक संगीत तथा ख्याल के एक अत्यन्त उदात्त गायक के रूप में प्रसिद्ध हुए। इस घराने का मुख्य गायन ख्याल ही रहा। ख्याल की मधुरिमा तथा ठुमरी की मृदुलता दोनों का सम्यक निदर्शन इस घराने में देखने को मिल जाता है। भावपूर्ण आलाप एवं लयपूर्ण रसविवेक पर अधिक ध्यान देना एवं ताल वैचित्य उत्पन्न कर देना यहां की मौलिक विशेषता मानी गई है। ख्याल की मौलिक मधुरता तथा ताल का सुनियोजन यहां के वृद्ध गायकों की खासियत है। इस घराने के लब्ध प्रतिष्ठित गुणी कलाकारों में श्री रामचन्द्र झा, श्री दिनेश्वर झा, श्री रामकुमार झा का नाम अत्यन्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है।

7. मधुबनी घराना: यह घराना भी काफी पुराना है। ''स्व. श्री मिश्र बन्धु'' इस घराने के संस्थापक थे। श्री मनसा मिश्र एवं श्री डीही मिश्र उत्तर प्रदेश से आकर मधुबनी में बस गए थे। तब से ही इस घराने की शुरूआत हुई थी। इनके पिता पहले कथावाचक थे तत्पश्चात् उन्होंने ख्याल गायन प्रारंभ कर दिया। इन्हें लोग ''कथैस'' कहा करते थे। कथा को संगीत में ढालकर कहना तथा इसी से अपनी आजीविका चलाना इनका कर्म-धर्म था, यही पेशा था एवं यही इस घराने का शिलान्यास भी था। इसी घराने में ''सीत्'' मिश्र नचारी के प्रसिद्ध गायक हुए। यहां ध्रुपद-धमार गायकी का भी प्रचलन है। मिथिला के लोक-संगीत को रागों में बांधकर लोक विश्रुत बनाना इस घराने का पावन कर्तव्य माना जाता रहा है।

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

समयान्तर में कथा को छोड़ केवल संगीत को अपना कर्म-धर्म मानना एवं स्वर साधना करना इस घराने की विशेषता हो गई। इस घराने की प्रमुख गायकी ख्याल की विशेषता हो गई। इस घराने की प्रमुख गायकी ख्याल थी जिसमें ध्रुपद अंग विद्यमान था। साथ ही इसमें मिथिला के लोक-संगीत की धुनों की भी अत्यन्त सम्मोहक झलक दृष्टिगत होती थी। इस घराने के प्रमुख गायकों में श्री गुरै मिश्र, श्री आद्या मिश्र, श्री राम जी मिश्र का नाम अत्यन्त पूजनीय है।

8. सकरपुरा घराना: यह घराना ज्यादा पुराना नहीं है परंतु अत्यन्त समृद्ध है। इस घराने को तबले के घराने के रूप में ज्यादा प्रतिष्ठा मिली है। यहां गायन का भी प्रचुर प्रचार है फिर भी यहां तबले का उत्कर्ष अभिनन्दनीय है। इस घराने के जनक स्व. श्री ब्रजकिशोर राय को माना जाता है। इन्होंने भारत प्रसिद्ध पखावजी श्री यमुनाप्रसाद जी से पखावज की क्रमिक शिक्षा ग्रहण की। बाद में पं. श्री मौलवीराम जी के शिष्य पं. श्री रणपाल जी ने इन्हें तबले की शिक्षा दी। ये कुशल कलाकार एवं कुशल शिक्षक थे। इन्होंने संगीत की निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने हेतु एक संगीतालय की स्थापना की जो बाद में चलकर घराने में परिणत हो गया। श्री ब्रजकिशोर राय नियमित रूप से तबला, पखावज, हारमोनियम, सितार एवं सारंगी की उपासना करते रहे। इनके पुत्रद्वय पं. श्री रामाधार राय और पं. श्री रामनरेश राय जी ने क्रमशः गायन एवं वादन की विद्या का अधिक प्रचार किया। श्री राय बन्धुओं ने लगातार चार दशकों तक संगीत की अनन्य भक्ति की है।

पं. श्री रामाधार राय जी के कई गायक शिष्य हुए जिनमें सर्वश्री बलभद्र झा, श्री रामबालक जी, श्री सुरेश प्रियदर्शी, अलका महन्त, श्री रामानन्द जी काफी प्रसिद्ध हुए। पं. श्री रामनरेश राय जी का भी इस घराने को समृद्ध करने में अभूतपूर्व योगदान है। यह घराना बनारस का औरस पुत्र कहा जाता है, क्योंकि इस घराने में बनारस घराने की सारी विशेषताएं सिमटी हुई है। इसके साथ ही यहां साधना की एक अलग शैली भी है।

9. मिश्र घराना: ख्याल गायन में बिहार अन्तर्गत भागलपुर के कत्थकों का मिश्र घराना में योगदान सराहनीय कहा जा सकता है। बिहार में ख्यालियों का एक मात्र यही ऐसा घराना है जिसमे तीन पीढ़ियों से गायकों का सिलसिला अवलोकनीय है। इस घराने के संगीतकार अपने को स्वामी हरिदास की शिष्य परम्परा से जोड़ते हैं। इस घराने के गायकों में पं. सुरजन मिश्र का नाम उल्लेखनीय है जो बसालतगंज (उत्तर प्रदेश) के निवासी थे। परन्तु बरारी (भागलपुर) के ठाकुर–जमींदारों का संरक्षण पाकर स्थायी रूप से ये भागलपुर में ही बस गए। उनकी कुशलता गायन के साथ-साथ बंदिशों की रचना में भी थी। सुरजन मिश्र के पुत्र बद्रीनाथ मिश्र को दरभंगा–राज से ''नाहर'' की उपाधि से विभूषित किया गया था।

10. बड़हिया घराना: बिहार के प्रमुख घरानों में से एक प्रमुख घराना ''बड़हिया घराना'' है। यह घराना मुख्य रूप से तबला-पखावज के लिए प्रसिद्ध है। वस्तुतः बड़हिया घराना लय की चमत्कारिता का घराना है। इस घराने के प्रवर्तक कलाकार स्व. पं. चंडीशरण मिश्र एवं स्व. पं. बच्चा मिश्र हुए।

पखावज शैली से तबला का खुला बाज जिसमें पांचों उंगलियों का प्रयोग होता है। इस घराने की खासियत है। इस घराने में लय की विशेषताएं कठिन लयकारियों का चमत्कार, बोल एवं पढ़ंत एक विशेषतायुक्त होती है। इस घराने के वादक वीरासन अवस्था में बैठते हैं। सर्वप्रथम बड़हिया घराने में आसन शिक्षा पर ही ध्यान दिया जाता है। इस घराने में वादक बाएं को उल्टा रखकर नहीं बजाते अर्थात् स्याही की ओर से बजाने की अनुमति बड़हिया-घराने में नहीं है। तबले तथा बाएं के ध्वनि-संतुलन पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इस संतुलन से विशेष गमक की उत्पत्ति इस घराने की खासियत है।

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

हाथ कलाई से कोहनी तक सीधा रखना, अंगूठे को नीचे न लटकने देना, सम्पूर्ण हाथ के प्रयोग से बोलों को निकालना, पेट से कोहनी आठ इंच से अधिक दूर रखना इत्यादि इस घराने की खासियत है तथा जो बोल मुंह से पढ़ा जाए वह हू-ब-हू तबले पर उतरे केवल नकल मात्र ना हो।

ध्रुपद-धमार शैली की संगति के लिए बड़हिया-घराना उपयुक्त घराना माना जाता हैं बड़हिया घराना वस्तुतः लय प्रधान घराना है। अतः लय की आवश्यकता तबला, पखावज के साथ-साथ गायन शैली में भी होती है। वर्तमान में बड़हिया घराने के प्रतिनिधि कलाकारों में विख्यात तबला-वादक पं. बलराम मिश्र, श्री सरयू भारती, डॉ. ठाकुर प्रसाद सिंह ''तेउसाबी'', श्री चन्द्रमौली प्रसाद सिंह, श्री मदनप्रसाद सिंह, श्री गीता झा इत्यादि का नाम उल्लेखनीय है।

11. आरा घराना: पटना के दक्षिण-पश्चिम छोर पर स्थित भोजपुर का जिला मुख्यालय आरा है जो अपने सांगीतिक गौरव के लिए प्रसिद्ध रहा है। आरा के ग्रामीण क्षेत्र में बसा जमीरा नामक स्थान के एक जमींदार बाबू शत्रुंजय प्रसाद सिंह उर्फ ललन बाबू का नाम संगीत जगत में सर्वविदित है। उन्होंने अपना मुख्यालय आरा मे ही बना रखा था। ये स्वयं राष्ट्रीय स्तर के पखावज वादक थे। उनके दरबार में सैकड़ों गायक-वादक सरंक्षण प्राप्त कर संगीत-साधना करते थे। स्व. ललन बाबू ने तबला वादन के क्षेत्र में भी अपने अनेक शिष्यों को तैयार किया जिन्होंने इनका नाम रोशन किया।

12. बीरबन घराना: यह घराना 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध में स्थापित हुआ। अतः यह घराना अनुमानतः स्वंतत्रापूर्व स्थापित हुआ था। बिहार प्रान्त के पूर्वोत्तर सीमा पर अररिया जिलान्तर्गत बीरवन नामक एक ग्राम है। यहां 20 वीं सदी के पूवार्द्ध में ''पं. गंगादास'' नामक एक महान संगीतविद् हुए। वे एक ओर शास्त्रीय गायन में पारंगत थे, वहीं दूसरी ओर सितार, वायलिन इत्यादि तारयंत्रों सहित तबला के भी विद्वान थे। उनके शिष्य श्री धर्मानंद झा नामक एक प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे। श्री झा ने कठिन परिश्रम और साधना द्वारा अपने गुरू की विलक्षण गायन-शैली को आत्मसात करते हुए उसे अपने परिवार सहित अन्य शिष्यों को भी इसकी विधिवत शिक्षा दी। पं. झा के प्रमुख शिष्यों में उनके नाती पं. मणिकुमार झा का नाम विशेष उल्लेखनीय है जो वर्तमान तक इस घराने की परम्परा को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

13. गया घराना: हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के उद्विकास में गया घराने का महत्वपूर्ण योगदान है। सन् 1950 ई. तक गया सांस्कृतिक गतिविधियों का केन्द्र रहा। उस समय संगीत के आश्रय दाता नखफोफा जी थे जिनके सौजन्य से अनेकों दिन-रात की महफिलों का आयोजन हुआ करता था। जिनमें देश के कोने-कोने से सुप्रसिद्ध कलाकार जैसे- गंगू बाई हंगल, डी.वी. पलुस्कर, ओंकारनाथ ठाकुर, अल्लारखां खां, बेगम अख्तर तथा बड़े गुलाम अली खां अपनी कला का प्रदर्शन करते थे। गया के नवाब ने जद्दन बाई को आश्रय दिया था।

सदियों पूर्व (पुराने समय में) गया ठुमरी गायन केन्द्र में रूप में विकसित हुआ। बनारस की ''अवधि ठुमरी'' को इस घराने में अपने तरीके से कलात्मक रूप से निखारा। इस घराने के ठुमरी कलाकारों में ढेला बाई, सोनी महाराज, बलराम सिंह रामप्रसाद मिश्रा, उर्फ राम जी तथा जयराम तिवारी प्रमुख है। सौभाग्यवश यहां की ठुमरी गायकी यद्यपि प्रचलित नहीं, किन्तु जिन्दा है जिसे सहायता एवं प्रोत्साहन की आवश्यकता है। गोवर्धन मिश्रा तथा कमलेश्वर पाठक वर्तमान में इस घराने के प्रमुख कलाकार है। गया घराने के गायक टप्पा गायकी में भी निपुणता रखते हैं। इनमें से कुछ ख्यालिए (ख्याल गायक) भी थे किन्तु ठुमरी व ठप्पा उनके प्रदर्शन का मुख्य क्षेत्र था।

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

अतः हमें यह ज्ञात होता है कि बिहार में संगीत के सैद्धांतिक पक्ष के साथ ही साथ क्रियात्मक पक्ष का भी प्रचुर विकास हुआ है। बिहार में संगीत संबंधित अनेक घराने हैं जिनका सम्पूर्ण भारतीय शास्त्रीय संगीत को विकासशील बनाने में उल्लेखनीय योगदान है। इन घरानों के संस्थापक तथा उनके वंश परम्परा के कलाकारों के निरंतर सहयोग के फलस्वरूप आज बिहार ही नहीं अपितु पूरे भारतवर्ष का संगीत जगत लाभान्वित हुआ है एवं हो रहा है। बिहार की पावन स्थली पर अनेक गायक संत कवि हुए हैं जिन्होंने भी संगीत को प्रतिष्ठित करने में अपना अविस्मरणीय योगदान प्रदान किया है। इनके प्रयासों के फलस्वरूप ही आज बिहार अपनी संगीत में विशिष्टता के लिए पूरे भारतवर्ष में जाना जाता है।

बिहार की प्रमुख नृत्यकलाएं

मानवीय अभिव्यक्तियों को प्रदर्शित करने की एक कला 'नृत्य' है। इसका जन्म मानव विकास के साथ ही हुआ है। बिहार की संस्कृति आरंभ से ही नृत्यकला से जुड़ी रही है। यहां के नृत्य पर स्थानीय परिवेश का विशेष प्रभाव पड़ा है। बिहार में निम्नलिखित प्रकार के नृत्यकला का प्रदर्शन किया जाता है-

☞ **विदेशिया:** बिहार में प्रसिद्ध विदेशिया नृत्य भोजपुरी भाषी नृत्य है जिसका बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष रुप से मंचन किया जाता है। मनोरंजन से भरपूर इस नृत्य में समाज से जुड़ी बुराइयों को समाप्त करने का सन्देश दिया जाता है। अपने नाम के अनुरुप विदेशिया में एक महिला व उसके पति से विलगाव की भावना प्रदर्शित होती है। महिला का पति जीविका हेतु घर से दूर चला जाता है। इस भावना को शब्दों में अभिव्यक्त करने का कार्य सर्वप्रथम भिखारी ठाकुर द्वारा किया गया था। इसलिए भिखारी ठाकुर को विदेशिया लोकनृत्य का जनक कहा जाता है। विदेशिया की प्रस्तुति में मुख्यपात्र है-नट और नटी। नट की वेशभूषा रंगीन ढोलंगी, धोती-कमीज तथा पगड़ी होती हैं। नटी की पारम्परिक भूमिका एक पुरुष पात्र द्वारा निभाई जाती है जो घाघरा-चोली पहनता है। इस प्रस्तुति में मंजीरा या झांझ, ढोलक, खंजरी, नगाड़ा तथा हारमोनियम का प्रयोग पैरों द्वारा किया जाता है।

☞ **नाचारी:** यह बिहार के मिथिलांचल क्षेत्र में अधिक प्रसिद्ध है। इसमें महिलायें वस्त्र एवं रुप सज्जा से सुसज्जित होकर विद्यापति के पदों को गाते हुए आकर्षक नृत्य करती है।

☞ **झरनी:** यह उत्तरी तथा पूर्वी बिहार में निवास करने वाले शिया मुसलमानों द्वारा किया जाने वाला लोकनृत्य है। इसमें ताजिये के साथ जाते हुए पुरुष मुसलमान रास्ते भर नाचते जाते हैं।

☞ **संतरी:** यह भी बिहार का एक प्रसिद्ध लोकनृत्य है जिसमें स्त्री-पुरुष एक साथ नाचते हैं।

☞ **होरी अथवा जोगीड़ा नृत्य:** यह बिहार के सुप्रसिद्ध त्योहार होली/होरी के शुभ अवसर पर स्त्री तथा पुरुषों द्वारा अपने-अपने समूह में हर्षोल्लास के साथ विभिन्न भाव-भंगिमाओं के साथ किया जाने वाला लोकनृत्य है। इसमें नृत्य करते हुए लोग रंग-अबीर आदि को एक-दूसरे पर फेंकते हैं।

☞ **बोलबै नृत्य:** यह नृत्य भागलपुर तथा उसके आस-पास के क्षेत्रों में विशेष रुप से प्रसिद्ध है। इसमें पत्नी के विरह भाव को दिखाया जाता है, जब उसका पति परदेश जाने को होता है।

☞ **झिझिया:** बिहार के दरभंगा, सीतामढ़ी, मधुबनी, सुपौल, सहरसा आदि जिलों में यह नृत्य विशेषरुप से लोकप्रिय है। यह नृत्य तंत्र-मंत्र तथा डायन से संबंधित है। कभी-कभार इस नृत्य में राजे-रजवाड़े का दृश्य भी प्रदर्शित किया जाता है।

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

☞ **इन्नी-बिन्नी:** यह अंगिका प्रदेश का प्रमुख नृत्य है। इसमें पति-पत्नी प्रसंग पर महिलाएं नृत्य करती हुई उनके व्यवहारिक संबंधों को दिखाती है।

☞ **देवहर:** समस्त बिहार के साथ-साथ झारखण्ड में भी यह नृत्य प्रसिद्ध है। इसमें देवताओं को प्रसन्न करने के प्रसंग को दिखाया जाता है। नाच करने वाला व्यक्ति देवहर का रुप धारण कर देवी-देवताओं का प्रतिनिधित्व करता हुआ गीत एवं नृत्य करता है। कहीं-कहीं यह नृत्य भगता नाच के नाम से भी प्रसिद्ध है। यह नृत्य ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक प्रचलित है। दैवीय आस्था को समेटे एक व्यक्ति अथवा स्त्री हाथ में छाते की छड़ी लेकर गाँव के पवित्र नदी अथवा पोखर में सार्वजनिक स्नान करता/करती है, जिसके पीछे-पीछे भक्तों का समूह चलता है।

☞ **डोमकच:** शादी के शुभ अवसर पर महिलाओं का समूह डोमकच नृत्य करती है। जब दुल्हे के घर से बारात दुल्हन के घर रवाना होती है और घर पर केवल महिलाएँ ही रह जाती है तो वे पुरुषों का वेश बनाकर नृत्य नाटिका करती है।

☞ **धन कटनी:** यह नृत्य किसान परिवारों द्वारा खुशियाँ मनाने का प्रतीक है। धान की फसल कट जाने के बाद किसान परिवार खुशियाँ मनाते हुए गीत गाता है तथा नृत्य भी करता है।

☞ **बगुलो:** उत्तरी बिहार में यह नृत्य अधिक प्रसिद्ध है। इसमें ससुराल से रुठकर जानेवाली एक स्त्री का राह चलते एक दूसरी स्त्री के साथ नोंक-झोंक का बड़ा ही सजीव चित्रण किया जाता है। इस नृत्य शैली में जहाँ एक तरफ ताने का प्रहार होता है वहीं इसके प्रतिकार का भी चित्रण होता है।

☞ **सामा-चकेबा:** यह बिहार में मैथिली भाषी लोगों का एक प्रसिद्ध त्यौहार है। यह भाई-बहन के बीच घनिष्ठ संबंध को दर्शाने वाला त्यौहार है। यह उत्सव कार्तिक शुक्ल पक्ष के सात दिन बाद शुरु होता है। आठ दिनों तक यह उत्सव मनाया जाता है और नौवें दिन बहने अपने भाइयों को धान की नयी फसल की चुरा एवं दही खिला कर सामा-चकेवा के मूर्तियों को तालाबों में विसर्जित कर देती है।

☞ **जुमारी:** यह नृत्य विशेषरुप से मिथिलांचल क्षेत्र में किया जाता है। यह गुजरात के 'गरवा' के समान है। इस नृत्य में केवल विवाहित महिलायें ही प्रदर्शन करती है इसलिए इसे अच्छे एवं शुभ प्रतीक के रुप में माना जाता है। आश्विन-कार्तिक के महीनों में स्वच्छ आकाश के नीचे चाँदनी रात में यह नृत्य किया जाता है।

☞ **जट-जटिन:** यह लोकनृत्य जट-जटिन के दांपत्य जीवन से संबंधित है। यह नृत्य सावन से कार्तिक माह के पूर्णिमा तक किया जाता है। यह नृत्य केवल अविवाहितों द्वारा ही किया जाता है। इसमें प्यार, विरह, क्रोध आदि को प्रस्तुत किया जाता है।

☞ **लौंडा नाच:** यह बिहार के भोजपुर क्षेत्र में अधिक प्रचलित है। इसमें लड़का, लड़की का रुप धारण कर पूरी तरह श्रृंगार करके नृत्य करता है।

☞ **झिझिया:** इसे समूचे बिहार में मनाया जाता है। इसमें स्त्रियाँ राजा चित्रसेन और उसकी रानी की कथा प्रसंग पर गीत गाते हुए नृत्य करती है। विशेषरुप से ग्रामीण महिलाओं द्वारा एक घेरा बनाकर सामूहिक रुप से इसमें नृत्य किया जाता है। झिझिया नृत्य मुख्यत: बारिश कराने के लिए भगवान इन्द्र को प्रसन्न करने का कर्मकांड युक्त नृत्य है।

☞ **पनवड़िया नृत्य:** यह एक पुरुष प्रधान नृत्य है जो बच्चे के जन्म उत्सव के अवसर पर किया जाता है। इस नृत्य में पुरुष लोकगीत गाते हुए झूम-झूम कर नृत्य करते हैं।

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

☞ **खोलडीन नृत्यः** यह विवाह एवं मांगलिक अवसरों पर बाहर से बुलाई गई व्यवसायिक महिलाओं द्वारा आमंत्रित अतिथियों के मनोरंजन के लिए किया जाने वाला नृत्य है। इसमें नृत्य करने वाली महिलायें इनाम में राशि भी ग्रहण करती है।

☞ **छऊ नृत्यः** यह एक पुरुष प्रधान एवं युद्ध भूमि से संबंधित नृत्य है। इस नृत्य की दो श्रेणियाँ है, पहला-हथियार श्रेणी और दूसरा काली भंग श्रेणी। इसमें श्रृंगार रस की प्रधानता होती हैं। यह नृत्य परंपरा लोक संगीत की धुन के साथ प्रस्तुत किया जाता है। इसमें लड़ाई की तकनीक एवं पशु की गति और चाल को दर्शाया जाता है। इसमें गृहिणी के काम-काज पर भी नृत्य प्रस्तुत किया जाता है। यह रात्रि में किया जाने वाला नृत्य है जिसमें पुरुष, स्त्री का वेश धारण कर नृत्य करता है। यह नृत्य बिहार के पूर्वी जिलों यथा कटिहार, पूर्णिया तथा किशनगंज में ज्यादा प्रचलित है।

☞ **करिया झूमरः** यह नृत्य महिलाओं के द्वारा किया जाता है। इसमें महिलायें एक दूसरे के हाथों में हाथ डालकर वृत्ताकार घूमते हुए नृत्य करती है।

☞ **कठफोड़वा नृत्यः** यह नृत्य बिहार के पूर्वी एवं पश्चिमी चम्पारण जिलों में विशेष मांगलिक अवसरों पर किया जाता है। इसमें लकड़ी और बांस की एक रंग बिरंगी घोड़े जैसी आकृति तैयार की जाती है और नर्तक इसे अपने कमर में बांधकर वाद्ययंत्र के साथ नृत्य करता है।

☞ **करमा नृत्यः** यह नृत्य बिहार के जनजातियों के द्वारा कर्म देवता के समक्ष सामूहिक रुप से किया जाता है जिसमें महिलाएँ और पुरुष एक-दूसरे के कमर में हाथ डालकर सामूहिक रुप से नृत्य करते हैं। कृषि प्रधान राज्य बिहार में यह नृत्य फसल बोते एवं काटते समय की जाती है।

☞ **विद्यापति नृत्यः** यह नृत्य पूर्णिया जिला में अधिक लोकप्रिय है। मिथिला के महान कवि विद्यापति के पदों को गाते हुए स्त्री-पुरुष सामूहिक रुप से नृत्य करते हैं।

☞ **कजरी नृत्यः** यह सावन के महीनें में गाया और खेला जाने वाला एक नृत्य नाटिका है। इस नृत्य विद्या में बारिश के द्वारा कैसे पृथ्वी पर वास करने वाले लोग खुश हुए, इसका वर्णन किया जाता है। कजरी नृत्य सावन के मौसम को और भी सुहावना बना देता है।

☞ **नारदीः** यह एक प्रकार का कीर्तनिया नाच है। इसमें परंपरागत साज मृदंग एवं साल का प्रयोग किया जाता है। कीर्तनकार इस नृत्य विधा को करते समय विभिन्न प्रकार के स्वांग किया करते हैं।

☞ **गंगियाः** बिहार की सर्वप्रमुख एवं पतित पावनी नदी गंगा में स्नान करने के बाद उसकी स्तुति करने की परंपरा है। गंगा स्तुति महिलाओं के द्वारा नृत्य के माध्यम से भी जाती है जिसे गंगिया नृत्य की संज्ञा दी गयी है। यह नृत्य प्रायः गंगा घाटो पर की जाती है जो बिहार की समृद्ध संस्कृति का परिचायक है।

☞ **लौढ़ियारीः** इस नृत्य का नायक प्रायः किसान होता है जो अपने बथान (जहाँ गाय-भैंस बांधे जाते हैं) पर सायं एवं भोर काल में भाव-भंगिमाओं के साथ गाता एवं नाचता है। बिहार का यह लोकनृत्य मानव-पशु प्रेम एवं संबंध को प्रदर्शित करता है।

☞ **मांझीः** बिहार की मल्लाह जाति द्वारा यह नृत्य नदियों में नाव खेते समय किया जाता है। हल्के नृत्य की विशेषता तथा गीत के मधुर बोल नदियों के शांत जल को भी नाचने पर विवश कर देते हैं।

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

☞ **घो-घो रानी नृत्य:** बाल्यकाल में छोटे-छोटे बच्चों द्वारा खेला गया खेल घो-घो रानी नृत्य कहा जाता है। इस नृत्य में एक लड़की बीच में स्थिर रहती है तथा चारों तरफ से शेष लड़कियाँ गोल घेरा बनाकर गीत गाती हुई घूमती है।

☞ **धोबिया नृत्य:** भोजपुर क्षेत्र के धोबी समाज में प्रचलित यह नृत्य विवाह एवं मांगलिक अवसरों पर सामूहिक रुप से किया जाता है।

बिहार में कला परंपरा को बढ़ावा देने वाले प्रमुख संस्थान-

1. *मिथिला चित्रकला संस्थान, मधुबनी*
2. *बिहार ललित कला अकादमी, पटना*
3. *बिहार संगीत नाटक अकादमी, पटना*
4. *भारतीय नृत्य कला मंदिर, पटना*
5. *अंतर्राष्ट्रीय कन्वेंशन सेन्टर, राजगीर (नालंदा)*
6. *बिहार राज्य फिल्म विकास एवं वित्त निगम लिमिटेड, पटना*
7. *फिल्म सिटी - राजगीर*

स्थापत्य एवं मूर्तिकला

प्राचीन भारतीय इतिहास में सिंधु-घाटी सभ्यता एवं मौर्य शासन काल में भारतीय स्थापत्य एवं वास्तुकला का विकास होता है। यद्यपि बाद के शुंग, कुषाण, सातवाहन, गुप्त, वर्धन, राष्ट्रकूट, पल्लव, चोल आदि वंश के शासकों के काल में भी स्थापत्य एवं वास्तुकला का विकास होता रहा।

मौर्यकालीन कला:

मौर्य-काल से पूर्व की कलात्मक वस्तुओं का निर्माण लकड़ी, मिट्टी की ईंटों तथा घास-फूस आदि से होता था। समय के साथ वे नष्ट हो गए इसलिए वर्तमान में उस कला का प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिलता है। मौर्यकाल में ही सर्वप्रथम कला के क्षेत्र में पाषाण का प्रयोग किया गया जिसके परिणामस्वरूप इस युग की कलाकृतियाँ आज भी देश के विभिन्न हिस्सों में विद्यमान है। मौर्ययुगीन कला को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

1. राजकीय कला: इसका विकास राजकीय संरक्षण एवं देखरेख में मौर्य शासकों द्वारा किया गया। जैसे-राजप्रसाद, स्तम्भ, गुहा-बिहार, स्तूप, चैत्यगृह, मंदिर आदि।

2. लोककला: इसमें स्वतंत्र कलाकारों द्वारा लोकरूचि की वस्तुओं का निर्माण किया गया। जैसे- यक्ष-यक्षिणी की प्रतिमायें, मिट्टी से बनी मूर्ति आदि।

राजकीय कला

राजप्रसाद- मौर्यकालीन भवनों का सबसे सुंदर उदाहरण पटना के निकट कुम्हरार में मौर्य प्रसाद में दिखाई देता है। मेगास्थनीज ने कहा था कि पाटलीपुत्र स्थित मौर्य राजप्रसाद उतना ही भव्य था जितना ईरान की राजधानी में बना राजप्रसाद। पाटलीपुत्र स्थित राजप्रसाद में स्तंभयुक्त हॉल है तथा इसकी छत लकड़ी का बना हुआ है। सतह एवं छत में लकड़ी का प्रयोग देशी परंपरा का परिचायक है। इस भवन की प्रशंसा यूनानी लेखक अत्यंत उदारतापूर्वक करते हैं। उनके अनुसार यह

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

सूसा तथा एकवतना के महलों से भी श्रेष्ठ है। फाह्यान तो इसे मनुष्यों द्वारा नहीं बल्कि देवों द्वारा निर्मित बताता है। पाटलिपुत्र नगर की सुरक्षा के लिए लकड़ी की चाहरदीवारी का निर्माण किया गया था जिसमें से तीर चलाने के लिए जगह-जगह छिद्र बने थे। मौर्य शासक अशोक ने राजकीय कला को विशेष संरक्षण दिया तथा उसका विकास किया। अशोक के समय निर्मित कलाकृतियों को चार भागों में बाँटा जा सकता है- स्तम्भ, स्तूप, वेदिका तथा गुहा-वास्तुकला।

स्तम्भ- मौर्यकालीन कला के उत्कृष्ट आदर्श के रूप में अशोक के शिला-स्तम्भ, उसके शिरोभाग और पाषाण मूर्तियाँ विशेष महत्वपूर्ण है। ये स्तम्भ गोलाकार है तथा 20 फीट से भी अधिक लंबे एकाश्म पत्थर से निर्मित है। स्तम्भों का भूमिगत भाग मोर की आकृति का तथा इसका ऊपरी भाग चतुर्भुजाकार चबूतरे के आकार का है जिसपर पशु की मूर्ति 3डी (तृतीय आयाम) में बैठी है।

सर जॉनमार्शल, पर्सी बाउन, स्टेला क्रेमिश जैसे इतिहासकारों ने अशोक निर्मित स्तम्भ को ईरानी स्तम्भों की अनुकृति बताया हैं परंतु यह सत्य नहीं है, क्योंकि-

- अशोक का स्तम्भ एकाश्म पत्थर से बना है वहीं ईरानी स्तम्भ भिन्न-भिन्न पत्थरों को जोड़कर बनाया गया है।
- अशोक का स्तम्भ बिना आधार के भूमि पर टिकाये गये हैं जबकि ईरानी स्तम्भों को आधार दिया गया है।
- अशोक स्तम्भ स्वतंत्र रूप से विकसित है जबकि ईरानी स्तम्भों को विशाल भवनों में स्थान दिया गया है।
- अशोक स्तम्भ के शीर्ष पर पशुओं (सिंह एवं सांड) की आकृतियाँ हैं जबकि ईरानी स्तम्भों पर मानव आकृतियाँ हैं।
- अशोक स्तम्भ सपाट है जबकि ईरानी स्तम्भ नालीदार है।

मौर्ययुगीन निर्मित प्रमुख स्तम्भ निम्नलिखित है- लौरिया नंदगढ़ का स्तम्भ, लौरिया अरेराज स्तम्भ, रामपुरवा के स्तंभ, दिल्ली का टोपरा स्तम्भ, दिल्ली में मेरठ स्तम्भ, इलाहाबाद स्तंभ, रूम्मिनदेई स्तंभ, सारनाथ स्तम्भ, बेसनगर का गरूड़ स्तंभ।

स्तूप- स्तूपों का निर्माण भी मौर्यकाल में आरंभ हुआ। स्तूप निर्माण की कला जनजातीय तत्वों से आयी थी। बताया जाता है कि जनजातीय सरदार के मृत्योपरांत उसे दफनाने के पश्चात् उसके ऊपर एक टीला बनाया जाता था। बाद में यह पद्धति बौद्ध पंथ ने अपना लिया। एक मिथक के अनुसार बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् उनके शरीर के अवशेष को आठ भागों में बाँटा गया था तथा उन पर आठ स्तूप निर्मित किए गए थे। इतिहासकारों के अनुसार अशोक ने 84,000 स्तूपों व विहार का निर्माण करवाया परंतु इस बात के ऐतिहासिक प्रमाण प्राप्त नहीं होते हैं। स्तूप एक अर्ध वृत्ताकार अथवा कटोरे के आकार का होता था जिसके आंतरिक भाग ईंटों तथा बाहरी भाग पत्थरों से बनाया जाता था। उसके केंद्र में हर्मिका होता था जिसमें पवित्र व्यक्ति का अवशेष रखा जाता था। भरहुत एवं सांची के स्तूप इसके उदाहरण हैं।

वेदिका- वेदिका स्तूप के ऊपर बनाई गई पाषाण कलाकृति होती थी जिसके ऊपर एक खम्भा बनाया जाता था तथा इस खम्भे के ऊपर तीन छतरियाँ भी बनी होती थी। अधिकांश वेदिका नष्ट हो चुके हैं परंतु कुछ के भग्नावशेष आज भी बोधगया एवं सारनाथ में पाए जाते हैं।

गुहा वास्तुकला- यह मुख्यत: चैत्य, विहार एवं गुफा मंदिरों के रूप में अभिव्यक्त हुई है जिसका निर्माण पत्थरों को काट कर किया जाता था। अशोक तथा उसके पौत्र दशरथ के द्वारा बराबर एवं नागार्जुन की पहाड़ियों में कुछ गुफाएं खोदकर आजीविकों को दान में दे दी गई। ये गुफाये बड़े-बड़े कमरों के रूप में बनी हैं। अंदर की दीवारों पर सुंदर चमकता हुआ 'वज्रलेप' है जिसमें कहीं-कहीं तो मुँह भी देखा जा सकता है। *इन गुफाओं में सुदामा गुफा कर्णचौपड़ की गुफा तथा लोमश ऋषि की गुफा* विशेष उल्लेखनीय हैं।

मूर्तिकला: सिंधु घाटी के नगरों के पश्चात् अशोक स्तंभों के शीर्ष, जिनमें से कुछ संभवत: उसके राज्य से पूर्व निर्मित हुए थे, मूर्तिकला के प्रमुख प्रारंभिक उदाहरण है। उनमें भारतीय मूर्तिकला की विशेषताएँ नहीं हैं लेकिन उनमें

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

अनेक स्वभाविक गुण उपस्थित हैं। सारनाथ स्तम्भ का प्रसिद्ध सिंह तथा रामपुरवा के स्तम्भ का कम प्रसिद्ध, परंतु अधिक सुंदर वृषभ, यथार्थवादी मूर्तिकारों की कृतियाँ हैं, जो कुछ-न-कुछ ईरानी और यूनानी परंपरा के ऋणी हैं। उड़ीसा की धौली-चट्टान को काटकर बनायी गयी हाथी की आकृति मौर्य मूर्तिकला की उत्कृष्टता को सूचित करता है। हाथी के अग्रभाग को उकेरा गया है। इसके सूढ़ एवं पैर का गठन अत्यंत स्वाभाविक है। हाथी चट्टान से बाहर निकलता हुआ प्रतीत होता है। इसी प्रकार की मिलती-जुलती आकृति कालसी (देहरादून) की एक चट्टान पर भी देखी जा सकती है।

लोककला- मौर्ययुगीन मूर्तिकला में राजकीय कला एवं लोककला दोनों का समावेश मिलता है। पटना के दीदारगंज से प्राप्त स्त्री की मूर्ति जिसका ऊपर का भाग खुला है, जबकि कमर के नीचे का भाग कपड़े और आभूषण से ढँका है, स्त्री शरीर के सौंदर्य का यह उत्तम और प्रभावशाली प्रदर्शन है जिसमें कमर पतली और नितंब भारी एवं उभरे हैं। दो विशाल आकृति के यक्ष की मूर्तियाँ तथा पुरुषों की दो नग्न मूर्तियाँ पटना के लोहानीपुर से प्राप्त हुआ है। इन मूर्तियों का निर्माण कामोत्सर्ग मुद्रा में हुआ है। ऐसा महसूस होता है कि ये मूर्तियाँ जैन धर्म से प्रभावित है। इन सभी मूर्तियों का निर्माण भूरे-बलुआ पत्थरों से किया गया है। इन पर आज भी मौर्यकालीन चमकीली पॉलिश विद्यमान है। मौर्ययुगीन, यक्ष-यक्षिणी की मूर्तियों के आधार पर कालान्तर में बुद्ध, बोधिसत्व तथा जैन तीर्थकरों की विशाल मूर्तियों का निर्माण किया गया।

गुप्तकालीन कला:

भारत में स्थापत्य एवं मूर्तिकला की शुरूआत मौर्यकाल में हुई। शुंग और कुषाण काल में कला की विकास यात्रा जारी रही। यह सही है कि इस काल में कला के नमूनों की संख्या सीमित थी और उनमें मौर्यकालीन कलात्मक गुणवत्ता भी मौजूद नहीं थी। फिर भी इस काल में कला के क्षेत्र में शिथिलता नहीं आयी जिसके कारण गुप्त शासकों के शासनकाल में एक ऐसे सृजनात्मक और निर्माणात्मक युग की शुरूआत हुई जिसने भविष्य के लिए असीम संभावनाओं को जन्म दिया। गुप्तकाल में कला और जीवन के मध्य घनिष्ट संबंध स्थापित हुआ तथा शिल्प और कला अपने विकास के चरम पर पहुंचा।

गुप्तकाल में वास्तुकला के क्षेत्र में अभूतपूर्व ढंग से विकास हुआ। इसकी प्रेरणा सारनाथ के क्षेत्र में विकसित और मथुरा कला से प्रभावित शैली से मिली थी। गुप्तकाल में ब्राह्मण धर्म के पुनरूत्थान ने वास्तुकला को व्यापक रूप से प्रभावित किया। इस युग की उल्लेखनीय उपलब्ध्यि मंदिरों का निर्माण किया जाना था। गुप्तकाल में मंदिर ऊंचे चबूतरे पर जिसके चारों ओर सीढ़ियां रहती थी, बने होते थे। मंदिर के अंदर गर्भगृह में देवी-देवताओं की मूर्तियों की स्थापना की जाती थी। गर्भ गृह के चारों ओर प्रदक्षिणा पथ और सामने मंडप होता था। गुप्तकालीन मंदिरों में बोधगया में ईटों से बना महाबोधि मंदिर और भभुआ का मुंडेश्वरी मंदिर का प्रमुख स्थान है। गुप्तकाल में निर्मित महाबोधि मंदिर के मरम्मत के सिलसिले में इस पर बहुत से क्षेपक लद गये हैं, फिर भी इसके चारों कोनों पर स्थित कंगूरी अभी भी अपनी योजना में मौलिक दिखती है और चैत्य का मेहराब बार-बार की मरम्मत के बाद भी अपनी मौलिकता की छाप को बरकरार रखे हुए है। इस मंदिर के मौलिक ढांचा का अनुमान कुम्हरार में मिले मिट्टी के 34 नमूनों से लगाया जा सकता है। भभुआ में माँ मुंडेश्वरी का चैत्य झरोखों से अलंकृत ईटों से बनाया गया मंदिर गठन, सजावट आदि की दृष्टि से आकर्षक है। इस मंदिर के चैत्य और मेहराब मनोहारी हैं। इसके निचले भाग में स्थित गंगा, यमुना, शिव और पार्वती की मूर्तियां अत्यंत ही सजीव और लुभावनी है। राजगृह की वैमार पहाड़ी पर गुप्त राजाओं द्वारा बनवाये गये दो मंदिर के साक्ष्य मिले हैं जिनमें से एक जैन मंदिर और दूसरा महादेव का मंदिर था। राजगृह के ही मनियार मठ की बनावट, सजावट और चित्रकारी सभी गुप्तकालीन कला की विशिष्टताओं से युक्त थी। गुप्तकालीन मंदिरों के मुहर भी प्राप्त हुए

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

हैं। गया के विष्णुपद मंदिर की मुहर पर 'विष्णुपाद स्वामी नारायण' शब्द खुदा था जिसके ऊपर की ओर विष्णु के चिह्न गदा, शंख और चक्र तथा नीचे शिव, सूर्य और चन्द्र के चिह्न अंकित थे। वैशाली के सूर्य मंदिर की मुहर पर 'भगवती आदित्यस्य' शब्द अंकित था।

मूर्तिकला के क्षेत्र में गुप्तकाल में एक नये युग का अविर्भाव हुआ। इस काल के मूर्तिकला के नमूने भोजपुर, रोहतास, नालंदा, गया, राजगीर, पटना, वैशाली, सुल्तानगंज आदि स्थानों में मिले हैं। शाहाबाद में कार्तिकेयन, राजगीर में पत्थर पर उत्कीर्ण वैष्णव मूर्तियां, कुम्हरार में पत्थर काटकर बनाया गया बुद्धदेव का शीश, वैशाली में दो चतुर्भुज शिवलिंग, नालंदा एवं सुल्तानगंज में बुद्ध की मूर्तियां मिली है। राजगीर में मिली गरूड़ पर आसीन विष्णु की मूर्ति अपनी सुंदरता और ऋतु रेखाओं के कारण दर्शनीय हैं। गुप्तकाल में भगवान बुद्ध की भिन्न-भिन्न मुद्राओं यथा ध्यान मुद्रा, अभय मुद्रा, वरद मुद्रा, भूमि स्पर्श मुद्रा, धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा आदि में मूर्तियां बनायी गयी। बुद्ध की मूर्तियों की श्रृंखला में भागलपुर के सुल्तानगंज से प्राप्त तांबे की खड़े अवस्था वाली प्रतिमा का विशिष्ट स्थान हैं। 7 फीट 3 इंच ऊंची और लगभग 1 टन वजन वाली इस धातु निर्मित बुद्ध के मुखमंडल को अलौकिक दिव्यता और शांत चित्त स्वरूप में प्रदर्शित किया गया है। गुप्त नरेश कुमारगुप्त ने नालंदा में एक बौद्ध विहार की स्थापना करवाई जहां आगे चलकर एक विश्वविख्यात विश्वविद्यालय का निर्माण हुआ। नालंदा का विद्या केन्द्र (विश्वविद्यालय) और इससे संबद्ध कुछ अवशेष गुप्तकालीन स्थापत्य के उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। वास्तव में गुप्तकला विशुद्ध भारतीय थी और उसमें स्वभाविकता, यथार्थता, प्राकृतिक सौन्दर्य, आध्यात्मिक एवं धार्मिक आदर्श, लावण्य एवं लालित्य का अदभुत संयमित प्रदर्शन किया गया था।

पालकालीन कला:

पाल युग में मूर्तिकला की एक विशिष्ट शैली का विकास हुआ। बुद्ध की अनेक मूर्तियाँ इस नई शैली का ज्वलंत उदाहरण है। पाल शासन के समय *नालंदा, बोधगया, कुर्कीहार, फतेहपुर, अतिचक, इमादपुर, बोधगया, राजगृह, भागलपुर, दिनाजपुर* आदि स्थान मूर्तिकला के पूरक केन्द्र बने तथा पत्थर एवं धातुओं की नई-नई मूर्तियाँ यहाँ बनाई गई जो अपनी सुंदरता के लिए आज भी प्रसिद्ध है। इन मूर्तियों का निर्माण पाल कालीन महान कलाकार *धीमन* तथा उनके पुत्र *विठपाल* की देखरेख में हुआ। पाल काल में बुद्ध के साथ-साथ अन्य हिन्दु देवी देवताओं यथा- विष्णु, बलराम, सूर्य, उमा-महेश्वर, गणेश आदि की मूर्तियाँ भी बनाई गई। नालंदा में मंदिर संख्या-13 से प्राप्त अवशेष धातु को गलाने और उसे साँचों में ढालने के प्रमाण प्रस्तुत करते है। पालयुगीन कांस्य मूर्तियाँ/प्रतिमाएँ साँचे में ढली हुई है। इनके नमूने नालंदा तथा कुर्कीहार (गया के समीप) आदि स्थानों में मिले है। नालंदा से प्राप्त नमूने मुख्यत: राजा देवपाल के समय के है जबकि कुर्कीहार से प्राप्त मूर्तियाँ परवर्ती काल की मालूम पड़ती है। दोनों की निर्माण शैली वस्तुत: एक समान है।

मूर्तिकला की विशेषता

- मूर्तियाँ काले बैसाल्ट पत्थर से बनायी जाती थी जो नजदीकी संथाल परगना और मुंगेर जिला की पहाड़ियों से प्राप्त किये जाते थे और मूर्तियों के अग्रभाग को ज्यादा दिखाया गया है।
- मूर्तियां शिल्पगत है और कलाकार की शिल्पगत परिपक्वता को दर्शाता है। इन मूर्तियों में अलंकरण की प्रधानता है जो इसे और भी आकर्षक बनाता है।
- बुद्ध की मूर्तियों में उनकी जीवन की सभी महत्वपूर्ण घटनाओं जैसे उनका जन्म, प्रथम धर्मोपदेश, निर्वाण आदि को दिखाया गया है। अधिकांश मूर्तियाँ हाथ से बनाई गयी है। इन पर तन्त्रपान का भी स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। कुछ मूर्तियां कांसे से भी बनाई जाती थी।

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

स्थापत्य कला: पालवंशी शासक महान निर्माता थे। नालन्दा, विक्रमशिला, ओदन्तपुरी, सोमपुरी में उनके द्वारा बनवाए गए बौद्ध विहार एवं मठों के अवशेष आज भी देखे जा सकते हैं। मठों का निर्माण भिक्षुओं के रहने के लिए किया जाता था। ये आवास योजनाबद्ध तरीके से बनाए गए थे, जिनमें खुले आँगन के चारों ओर बरामदे बने थे। कमरो में प्रकाश एवं हवा की कमी ना हो इसका विशेष रूप से ध्यान रखा गया था। कमरे दो मंजिला बनाई गई थी और इनमें सीढ़ियों की भी व्यवस्था थी। पाल राजा गोपाल ने नालंदा में बौद्ध विहार, सोमपुरी एवं ओदंतपुरी में मठ, महीपाल ने काशी में सैकड़ों भवन एवं मन्दिर, धर्मपाल ने विक्रमशिला महाविहार बनवाया। इसके अतिरिक्त कहलगांव का गुफा मंदिर, गया स्थित विष्णुपुर मंदिर का अर्द्धमण्डप, सूरजगढ़ जयमंगलगढ़ आदि पाल स्थापत्य कला के प्रत्यक्ष प्रमाण है।

मृदभांड कला: पाल कला में मृणमूर्तियों का निर्माण सुंदर एवं कलात्मक रूप में किया गया है। इस कला में मृदभाण्ड के सुन्दर और कलात्मक रूप देखे जा सकते है। इनके कुछ उल्लेखनीय उदाहरण विक्रमशिला महाविहार के अवशेषों से प्राप्त हुए है। मृणमूर्तियाँ दीवारों पर सजावट के लिए बनाई जाती थी। इनमें धार्मिक तथा सामान्य जीवन के अर्थात लोगों के रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, क्रिया-कलाप, रीति-रिवाज आदि की झलक स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। ऐसी प्रस्तुतियों में धार्मिक प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। बुद्ध, बोधिसत्व, तारा आदि की प्रस्तुति बौद्ध धर्म के और विष्णु, आदिवराह, अर्धनारीश्वर, सूर्य और हनुमान की प्रस्तुति हिन्दु धर्म के प्रभाव को दर्शाती है। कलात्मक सुंदरता का एक उत्कृष्ट उदाहरण एक तख्ती है, जिस पर एक स्त्री को बैठी हुई मुद्रा में दिखलाया गया है। एक हाथ में आईना लिए वह अपने रूप को निहार रही है और दूसरे हाथ की उँगलियों से अपनी माँग में सिन्दूर भर रही है। चेहरे की सुंदरता और भोलापन, उभरे हुए उरोज एवं उसकी पतली कमर के माध्यम से उसके शारीरिक सौन्दर्य पर ध्यान केन्द्रित करने का सफल प्रयास किया गया है।

मध्यकालीन स्थापत्य कला

12वीं सदी के अंत तक बिहार में तुर्क शासन की स्थापना हो चुकी थी। इसी के बाद से बिहार में बड़े पैमाने पर इस्लामी कला का विकास हुआ। इस्लामी कला वास्तव में अरब, अफगान एवं हिन्दू कला शैली का सम्मिश्रण थी। इस काल में सबसे अधिक मीनार, मेहराब, गुम्बद, मस्जिद, खानकाह आदि का निर्माण किया गया। इस्लाम धर्म में मूर्ति पूजा निषिद्ध था इसलिए मध्यकाल में मूर्तिकला का विकास नहीं हुआ। इस युग में स्थापत्य कला के क्षेत्र में विशेष ध्यान दिया गया। मध्यकालीन स्थापत्य कला की सर्वप्रमुख विशेषता उसकी, सादगी, विशालता और प्रभावोत्पादकता थी।

मध्यकाल में बिहार पर दिल्ली सल्तनत, शर्की, लोदी, सूर और मुगल शासकों का शासन रहा। इस वंश के शासकों ने वास्तुकला के क्षेत्र में गहरी रूचि ली। इसलिए मध्यकाल में बिहार में बड़ी संख्या में महलों, मस्जिदों और मकबरों का निर्माण हुआ। बिहार में मध्यकालीन स्थापत्य कला का पहला नमूना बिहारशरीफ में 1353 में निर्मित इब्राहिम (मलिक बया) का मकबरा है। इस मकबरे का निर्माण दिल्ली सल्तनत के बादशाह ग्यासुद्दीन तुगलक के मकबरे से प्रेरित है। इस मकबरे की दीवारे ढलुआं और गुम्बद लंबाकार है। बिहारशरीफ में ही स्थित हजरत मुहम्मद शिवस्तानी का मकबरा और पटना जिला के तेलहरां में स्थित सांगी मजिस्द इसी शैली के उदाहरण है।

15वीं शताब्दी में बिहार पर बंगाल के शर्की सुल्तानों का नियंत्रण स्थापित हो गया। अत: इस काल में बिहार में जो भी इमारते बनी उस पर बंगाली स्थापत्य शैली का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। बंगाली शैली का सर्वोत्तम उदाहरण मुंगेर में बना शाह नफी का मकबरा है। इस मकबरे का निर्माण 1498 में हुआ था। मुंगेर के किले के भीतर एक छोटे से टीले पर अवस्थित इस मकबरे में वर्गाकार कमरे तथा बड़े गुम्बद के आकारों का तारतम्य एवं चारों कोनों पर मौजूद वृत्ताकार कंगूरे इसकी सुंदरता को बढ़ा देते हैं।

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

बिहार के सासाराम में स्थित हसन खां, शेरशाह और इस्लाम शाह के मकबरे अफगान स्थापत्य शैली का प्रतिनिधित्व करते है। इनमें शेरशाह का मकबरा जो अपनी अनूठी कलात्मक शैली के लिए विश्वभर में प्रसिद्ध है। अफगान शैली का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। 1545 में निर्मित यह मकबरा एक झील के बीच में उंचे चबूतरे पर स्थित हैं। अष्टकोणीय आकार का यह मकबरा अष्टकोणीय मकबरों की श्रृंखला की अंतिम कड़ी है और यह हिन्दू-मुस्लिम स्थापत्य के सम्मिश्रण का एक सुंदर नमूना है। शेरशाह के मकबरे के पूर्व दिशा में स्थित हसन खां के मकबरे पर लोदी स्थापत्य कला का विशेष प्रभाव है। इस्लाम शाह (शेरशाह का उत्तराधिकारी) का मकबरा शेरशाह के मकबरे के समान ही है परंतु इसका निर्माण कार्य अधूरा ही रह गया। शेरशाह सूरी के मकबरे के ढांचे पर ही चैनपुर में बख्तियार खां के मकबरे का निर्माण किया गया। शेरशाह के शासनकाल में सासाराम के नजदीक शेरगढ़ के किले का निर्माण हुआ था और पटना के किले की अधारशिला रखी गई। उसी समय रोहतासगढ़ के किले में जामा मस्जिद का निर्माण हुआ था।

मुगल बादशाह बाबर और हुमायूं के शासनकाल में बिहार में स्थापत्य कला का कोई विशेष व उल्लेखनीय उदाहरण नहीं मिलता बल्कि इसके समयाकाल में पूर्व में निर्मित कुछ इमारतों का केवल मरम्मत ही करवाया गया। बादशाह अकबर के शासन काल में बिहार के सूबेदार राजा मानसिंह ने रोहतासगढ़ के किले की मरम्मत करवायी थी। उन्होंने रोहतासगढ़ के किले में आगरा और फतेहपुर सिकरी के महलों की शैली पर एक महल बनाने का असफल प्रयास किया। इस महल के अवशेष के रूप में हाथीपोल, शीश महल, फूल महल, सिंह दरवाजा, तख्त बादशाही, दीवान-ए-खास आदि का अस्तित्व आज भी मौजूद है। मानसिंह ने बैकटपुर के शिव मंदिर को सहायता प्रदान की थी। यह मंदिर अपने अलंकरण, गर्भगृह, दीवारों पर बने लघु चित्रों के लिए प्रसिद्ध है। मानसिंह ने ही रोहतासगढ़ के किले में हरिशचंद्र मंदिर का निर्माण करवाया था जिसके गर्भगृह के ऊपर अष्ट भुजाकार पट्टीधारी एक गुम्बद बना है।

रोहतासगढ़ के किले में स्थित इबास खां की मस्जिद और साकी सुल्तान का मकबरा अकबरकालीन मुगल स्थापत्य का उदाहरण प्रस्तुत करता है। मुगलशैली का बिहार में सबसे अच्छा उदाहरण मनेर में स्थित मखदुम शाह दौलत का मकबरा है जो छोटी दरगाह के नाम से प्रसिद्ध है। इस मकबरे का निर्माण जहांगीर के शासनकाल में बिहार के सूबेदार इब्राहिम खान काकर ने 1617 ई. में करवाया था। अकबर के काल में विकसित संश्लेषित शैली से प्रभावित होकर लाल पत्थर से निर्मित इस मकबरे का मुख्य आकर्षण इसकी जालियां, ऊंचा चबूतरा और भव्य गुंबद है। यह मकबरा मुगलकालीन चार बाग शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। पटना स्थित सैफ खां की मस्जिद, शाह अरजनी का मकबरा और पत्थर की मस्जिद भी बिहार में मुगल शैली के स्थापत्य के महत्वपूर्ण उदाहरण है।

औरंगजेब के शासक बनने के बाद स्थापत्य कला का विशेष विकास नहीं हुआ। इसकाल में पटना सिटी में निर्मित तीन मस्जिदें गैजा मस्जिद, अंबेर मस्जिद और उम्मीद खान का मस्जिद तथा आरा और सिरीस की जामी मस्जिद स्थापत्य कला की दृष्टि से कुछ विशेष महत्व नहीं रखता परंतु बिहारशरीफ में निर्मित नवरत्न नामक भवन काफी महत्वपूर्ण है। पटना का नवाब हैबतजंग का मकबरा उत्तर मुगलकालीन स्थापत्य शैली का महत्वपूर्ण उदाहरण है। 1784 में निर्मित यह मकबरा अपनी सुंदर जालियों के लिए प्रसिद्ध है।

बिहार के पर्व, त्यौहार एवं मेले

देश के अन्य भागों की तरह बिहार में भी मेला-त्यौहारों का विशेष महत्व है। बिहार को त्यौहारों का प्रदेश भी कहा जाता है। यहाँ विभिन्न धर्म एवं जाति के लोग वास करते है। धार्मिक एवं जातीय विविधता के कारण यहाँ सालो भर कोई-न-कोई त्यौहार मनाया जाता है। बिहार में राष्ट्रीय पर्वो के साथ आयोजित अन्य प्रमुख पर्वों एवं त्यौहारों का विवरण निम्नवत् है:-

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

☞ **क्रिसमसः** यह ईसाई धर्म मानने वालों का सर्वप्रमुख त्यौहार है जो प्रत्येक वर्ष (पूरे विश्व समेत) 25 दिसम्बर को अर्धरात्रि समय मनाया जाता है। इसी दिन प्रभु के पुत्र जीसस क्राइस्ट का जन्म हुआ था। बिहार के ईसाई धर्मावलम्बी नए वस्त्र पहनकर परिवार समेत चर्च जाते हैं और मानव कल्याण के लिए सामूहिक प्रार्थना करते है। इसके बाद वे एक दूसरे को बधाईयाँ देते है। सुन्दर रंगीन वस्त्र पहने बच्चे ड्रम्स, झांझ-मंजीरों के आर्केस्ट्रा के साथ चमकीली छड़ियाँ लिए हुए सामूहिक नृत्य करते है। इस दिन प्रभु की प्रशंसा में लोग कैरोल गाते है। वे प्यार और भाईचारे का संदेश देते हएु घर-घर जाते हैं।

☞ **जन्माष्टमीः** हिन्दुओं का यह महत्वपूर्ण त्यौहार श्रावण के कृष्ण पक्ष की अष्टमी के दिन भारत समेत बिहार में भी मनाया जाता है। इसी दिन भगवान विष्णु के अंशावतार श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था। इस शुभ अवसर पर पुरूष व औरतें उपवास व प्रार्थना करते हैं। मन्दिरों व घरों को सुंदर ढंग से सजाया व प्रकाशित किया जाता है। समूचे बिहार में यह त्योहार हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है।

☞ **रक्षाबंधन**–श्रावण मास के पूर्णिमा के दिन मनाया जाने वाला यह त्यौहार भाई-बहन के अटूट प्यार का प्रतीक है। इस दिन बहन अपने भाई की कलाई में राखी बांधती है और उनकी दीर्घायु व प्रसन्नता के लिए भगवान से प्रार्थना करती है ताकि किसी भी विकट परिस्थिति में वह अपनी बहन की रक्षा कर सके। इस दिन लोग अपने घरों में मीठे पकवान पकाते है और इसका सेवन करते है। ब्राह्मण द्वारा इस दिन अपने यजमान को रक्षाबन्धन बाँधा जाता है। साथ ही वे अपने पवित्र जनेऊ बदलते है और एक बार पुनः धर्मग्रन्थों के अध्ययन के प्रति स्वयं को समर्पित करते है। बिहार में इस त्योहार को दूसरे धर्म के लोग भी खुशी-पूर्वक मनाते हैं। वास्तव में रक्षाबन्धन जीवन की प्रगति और मैत्री की ओर ले जाने वाला एकता का एक बड़ा ही पवित्र त्यौहार है।

☞ **दीपावलीः** बिहार में हिन्दू और जैन समाज द्वारा बड़ी धूमधाम से दीपावली का त्यौहार मनाया जाता है। यह प्रकाश उत्सव है जो सत्य की जीत व आध्यात्मिक अज्ञान को दूर करने का प्रतीक है। हिन्दू लोग इसे राम की रावण पर विजय के उपरान्त अयोध्या आगमन के उपलक्ष्य में और जैन मतावलम्बी भगवान महावीर के जन्म दिवस के रूप में इस पर्व को मनाते है। यह पर्व कार्तिक मास के 15वें दिन (अमावस्या को)मनाया जाता है। इस त्यौहार के पूर्व घरों व दूकानों की सफाई की जाती है तथा उसे नए रंग से रंगाई-पुताई की जाती है। घरों में धन व समृद्धि बनी रहे, इसलिए भगवती लक्ष्मी की पूजा-अर्चना की जाती है। व्यापारी लोग इस दिन अपने बही-खाते बदलते है। बच्चे आतिशबाजी और पटाखे जलाकर आनंदित होते हैं। इस दिन मिट्टी से बने दीपक जलाये जाते है। यह जलता दीपक अज्ञान, लोभ, ईर्ष्या, कामना, क्रोध, अहंकार और आलस्य के अंधकार को भगाता हैं तथा ज्ञान, विवेक और मित्रता की चमक लाता है।

☞ **विजयादशमीः** यह त्यौहार आश्विन माह के शुक्ल पक्ष की 10वीं तिथि को समूचे बिहार में मनाया जाता है। यह त्यौहार अच्छाई की बुराई पर विजय का द्योतक है। इसी दिन मर्यादा पुरूषोत्तम राम ने ज्ञानी किन्तु व्यभिचारी राक्षसराज रावण का वध किया था। इस दिन को स्थानीय भाषा में दशहरा भी कहा जाता है। इस पर्व के दौरान जगह-जगह रामलीला का आयोजन किया जाता है और खुले मैदानों में रावण, कुम्भकर्ण और मेघनाद के पुतलों को जलाया जाता है। बिहार के राजपूत जाति के लोग इस दिन अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र की पूजा करते है। इस दिन समूचे बिहार में शक्ति की देवी दुर्गा की पूजा की जाती है। पौराणिक कथाओं के अनुसार इसी दिन आदिशक्ति दुर्गा ने महिषासुर नामक राक्षस का वध किया था।

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

☞ **रामनवमीः** अपनी धार्मिक परम्परा को आगे बढ़ाते हुए बिहार, रामनवमी के पर्व को बड़े ही हर्षोल्लास के साथ मनाता है। यह पर्व अयोध्या नरेश दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र मर्यादा पुरूषोत्तम राम के जन्म दिवस के रूप में चैत मास की शुक्ल पक्ष की नवीं तिथी को मनाया जाता है। इस दिन बिहार में जगह-जगह भजन, रामायण और तुलसीदास रचित रामचरितमानस के पाठ का आयोजन किया जाता है। कहीं-कहीं श्रीराम की झांकी भी निकाली जाती है। इस दिन मन्दिर, घरों के आँगन तथा पवित्र स्थानों पर भगवा अथवा केसरिया रंग का झण्डा भी गाडा जाता है जिस पर श्रीराम के प्रिय भक्त हनुमान जी की आकृति अंकित होती है।

☞ **मधुश्रावणीः** यह मुख्य रूप से मिथिलांचल क्षेत्र का पर्व है। जिसमें नव-विवाहित महिलायें नूतन परिधानों को पहने समुच्च में हिस्सा लेती है। यह पर्व नागपंचमी के दिन शुरू होता है। स्त्रियाँ अपने घर-आँगन को सजाती है। यह पर्व नवविवाहित स्त्रियों द्वारा जीवन में सिर्फ एक बार अपनी शादी के पहले श्रावण को मनाया जाता है। श्रावन माह के प्रारंभ होने के साथ शुरू हुआ यह पर्व लगातार 14 दिनों तक चलते हुए श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि को विशेष पूजा-अर्चना के साथ समाप्त होती है। इन दिनों नवविवाहिता व्रत रखकर गणेश, चनाई, मिट्टी एवं गोबर से बने विषहारा एवं गौरी-शंकर की विशेष पूजा कर पुरोहिताईन से विषहारा के जन्म और राजा श्रीकर का कथा सुनती है। इस व्रत के द्वारा स्त्रियाँ अखण्ड सौभाग्यवती के साथ पति की दीर्घायु होने की कामना करती है। यह पर्व नेपाल के कुछ हिस्सों में भी समान विधि विधान के साथ मनाया जाता है

☞ **सामा-चकेवाः** सर्दियों के आगमन के साथ ही हिमालय में रहने वाले पक्षी 'सामा और चकेवा' गंगा के मैदानी भागों में विस्थापन करते है। इन्हीं पक्षियों के आगमन के अवसर पर 'सामा-चकेवा' का त्यौहार मनाया जाता है। यह उत्सव मुख्यतः मिथिला में मनाया जाता है। यह त्यौहार भाई और बहन के रिश्ते को मजबूत बनाने के लिए समर्पित माना जाता है। यह पर्व कार्तिक शुक्ल पक्ष से सात दिन बाद शुरू होता हैं और नौवें दिन बहने अपने भाइयों को धान की नयी फसल का चुरा एवं दही खिला कर सामा-चकेवा के मूर्तियों (ये मूर्तियाँ बाँस की बनी एक टोकरी में रहती है जिसके साथ चुगला की भी मूर्ति रखी होती है) को तालाबों में विसर्जित कर देती है।

☞ **छठ पूजाः** छठ बिहार का सर्वप्रमुख एवं सबसे पवित्र त्यौहार है। लगभग सभी भारतीय सूर्य-देव की पूजा करते हैं किन्तु बिहार में सूर्य देवता की पूजा छठ-पूजा में विशेष रूप से विधि विधान के साथ की जाती है। यह एक मात्र अवसर है जहाँ पहले डूबते हुए सूर्य की पूजा होती है फिर उगते हुए सूर्य की। यह पर्व साल में दो बार मनाया जाता है। पहला चैत्र मास में और दूसरा कार्तिक मास में। यह दो दिवसीय पर्व है जिसमें व्रती (पुरूष अथवा स्त्री) बिना जल पीयें एंव बिना कुछ खाये दो दिनो तक लगातार उपवास रखता/रखती है। श्रद्धा और विश्वास का यह पर्व पूर्णतः प्रकृति को अनुकूल अवस्था में रखने तथा उसके उपहारों को ग्रहण करने का होता है। इस पर्व में खेतों से प्राप्त नवीन फसलों से पकवान बनाये जाते हैं जिसे अर्घ्य के रूप में सूर्य देवता को समर्पित किया जाता है।

☞ **होलीः** फागुन मास की पूर्णिमा तिथि को बच्चे, बूढ़े, नवयुवक तथा स्त्रियों द्वारा अबीर, गुलाल, रंग, फूल, गोबर, माटी आदि के साथ हिन्दुओं के नववर्ष के आगमन के खुशी में होली पर्व मनाया जाता है। बिहार में हर्षोल्लास के साथ मनाया जाने वाला यह पर्व भाईचारा और समरसता का द्योतक है जिसमें जाति, धर्म, संप्रदाय, पंथ आदि के बंधनों को तोड़कर सभी लोग एक साथ रंगों के इस त्यौहार को मनाते है। पौराणिक कथानुसार प्रह्लाद के पिता हिरण्यकश्यप के आदेश पर होलिका के प्रह्लाद को जलाने का प्रयास किया किन्तु इसमें

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

होलिका स्वयं जल गई और प्रह्लाद बच गया। तभी से यह पर्व बुराई पर अच्छाई की विजय के प्रतीक के रूप में मनाया जाने लगा। इस दिन लोग नये वस्त्र पहनते है, बुजर्गों से आशीष लेते हुए किशमिश, काजू, बादाम, नारियल, छुआरा आदि को प्रसाद रूप में ग्रहण करते हैं। घरों में आर्थिक क्षमतानुसार मीठे, शाकाहारी और मांसाहारी व्यंजन बनाये जाते हैं जिसे आस-पड़ोस के साथ मिल-बाँट कर खाया जाता है। रंगों की चमक में मानो, पुरानी शत्रुता, ईर्ष्या, द्वेष, भेद-भाव, झगड़ा आदि कहीं खो जाता है और लोग एक-दूसरे से गले मिलकर इस पर्व की बधाईयाँ देते हैं।

☞ **बसंत पंचमीः** माघ शुक्ल पंचमी के दिन बिहार में विद्या की देवी सरस्वती की पूजा की जाती है। इसे सरस्वती पूजा भी कहा जाता है। छात्रों में इस पूजा का विशेष महत्व है। इस पूजा में माँ सरस्वती की प्रतिमा बनाकर (मिट्टी से अथवा फोटो रूप में) इनका पूजन किया जाता है। जहाँ माता स्थापित होती है वहां छात्र अपनी-अपनी पुस्तकें, कॉपी, लेखनी आदि को उनके चरणों में समर्पित करते है। विद्यादायी सरस्वती उनके विवेक बुद्धि और ज्ञान को बढ़ाये इसके लिए सभी लोग/छात्र-छात्रायें उनकी वन्दना करते हैं। सरस्वती पूजा की परंपरा अब बिहार से बाहर के राज्यों में भी विकसित हो रहा है।

☞ **गोवर्द्धनः** दीवावली के ठीक, अगले दिन कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष प्रथमा तिथि को गोवर्द्धन पूजा का आयोजन किया जाता है। इस दिन मंदिरों में अन्नकूट की स्वादिष्ट पूड़ी बनायी जाती है और प्रसाद के रूप में इसका वितरण किया जाता है। इसलिए इसे 'अन्नकूट पूजा' भी कहा जाता है। इस दिन लोग घर के आंगन में गोबर से गोवर्धन पर्वत का चित्र बनाकर गोवर्द्धन भगवान की पूजा करते है। इस दिन लोग गायों की विशेष पूजा सेवा करते हैं तथा जगह-जगह पशु-क्रीड़ा का आयोजन भी किया जाता है।

☞ **भैयादूजः** यह गोवर्धन पूजा के अगले दिन (कार्तिक मास की द्वितीया तिथि) मनाई जाती है। यह पर्व भाई-बहन के पावन रिश्ते पर आधारित है जिसे बड़ी ही श्रद्धा और परस्पर प्रेम के साथ मनाया जाता है। इस दिन विवाहिता बहने अपने भाई को भोजन के लिए अपने घर (ससुराल) पर आमंत्रित करती है और गोबर से भाई-दूज परिवार का निर्माण कर उसकी पूजा-अर्चना करती है। इस पर्व पर जहाँ बहनें अपने भाई को दीर्घायु व सुख समृद्धि की कामना करती है, तो वहीं भाई भी उपहार स्वरूप बहन को कुछ भेंट कर उसकी सुरक्षा की प्रतिज्ञा लेता है।

☞ **महालयाः** यह विशेषतः हिन्दू धर्म का पर्व है। पितरों (पूर्वज) की देहवसान तिथि अज्ञात होने की स्थिति में हिन्दू अश्विन माह के कृष्ण पक्ष में लगातार 15 दिनों तक उनका श्राद्ध कर्म करते हैं। इसे ही महालया/श्राद्धपक्ष/पितृपक्ष कहा जाता है। अश्विन माह की अमावस्या को यह कार्य/नियम पूर्वजों को पिण्डदान करने के साथ ही समाप्त हो जाता है। इस दिन ब्राह्मण को घर बुलाकर उन्हें नया वस्त्र दिया जाता है तथा भोजन भी कराया जाता है। हिन्दू धर्म में ऐसा मत है कि श्राद्ध न करने पर पितरों को मुक्ति (जन्म-मरण की क्रिया) नहीं मिलती है और उनकी आत्मा भटकती रहती हैं अश्विन मास के अमावस्या को बिहार के गया जिले में एक मेला भी लगता है।

☞ **चित्रगुप्तः** यह पर्व मुख्यतः बिहार में रह रहे कायस्थ समाज/परिवारों द्वारा मनाया जाता है। कथाओं में चित्रगुप्त जी को सभी मनुष्यों के अच्छे-बुरे कर्मो का लेखा-जोखा रखने वाला बताया गया है। यह पूजा यम द्वितीया (भैयादूज के अगले दिन) को की जाती है। इस तिथि को लोग अपनी कलम, लेखन सामग्री तथा दवात की पूजा करते हैं।

☞ **देवोत्थानः** कार्तिक माह के शुक्ल पक्ष की एकादशी देवोत्थान, तुलसी विवाह एवं भीष्म पंचक एकादशी के रुप में समूचे बिहार प्रदेश में मनाया जाता है। दीपावली के बाद मनाये जाने वाले इस त्यौहार को प्रबोधिनी

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

एकादशी भी कहा जाता है। ऐसा माना जाता है कि आषाढ़ शुक्ल पक्ष की एकादशी की तिथि को भगवान विष्णु एवं अन्य देवतागण शयन करते है और चार माह बाद कार्तिक शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन उठते है। इसलिए इसे देवोत्थान अथवा देव-उठनी भी कहा जाता है। इन चार माहो में हिन्दू धर्म में कोई भी शुभ मांगलिक कार्य नहीं किए जाते। इसे साधारण बोलचाल की भाषा में 'भदवा' कहते हैं।

इस दिन (देवोत्थान के दिन) भगवान श्रीहरि के शालीग्राम रुप का विवाह तुलसी के साथ किया जाता है। इस विवाह का आयोजन कुंआरी तथा विवाहित स्त्रियों द्वारा कार्तिक मास में पवित्र सरोवर नदी आदि में स्नान करने के बाद किया जाता है। वे श्रीहरि से अपने मंगल जीवन की प्रार्थना करते हैं तथा पूरे-विधि विधान से श्रीहरि एवं देवतागण की पूजा भी करते हैं।

☞ **अक्षय नवमी:** यह एक पारिवारिक त्यौहार है जिसे बिहारवासी अन्य पर्वों की तरह ही मनाते हैं। इस पर्व का चलन मिथिला क्षेत्र में अधिक है जो कार्तिक माह के नवमी तिथि को मनाया जाता है। इस दिन आँवला के पेड़ को पूजने का विशेष महत्व होता है। गाँव-समाज की महिलायें संतान प्राप्ति तथा परिवार के सुख के लिए आँवले के वृक्ष की पूजा करती है। ऐसा माना जाता है कि इस आँवले के वृक्ष पर भगवान विष्णु और शिव का वास होता है।

☞ **कोजगरा:** मिथिला की संस्कृति में यह त्यौहार सदियों से चली आ रही है जो शुरु तो मिथिला के ब्राह्मण समुदाय द्वारा किया गया था परंतु वर्तमान में इसे अन्य जातियों द्वारा भी मनाया जाता है। अश्विन माह की पूर्णिमा को नवविवाहितों के लिए विशेषरुप से यह पर्व मनाया जाता हैं। इस दिन लक्ष्मी और गणेश की संयुक्त रुप से पूजा की जाती है। नवविवाहित लड़की के मायके से उसके ससुराल (वर पक्ष को) में फल, दही, मिठाईयाँ आदि का भार भेजा जाता है। इस पर्व में मधुर (मिठाई) और मखाना का विशेष महत्व होता है। नवविवाहितों का जीवन सुखमय हो, माँ लक्ष्मी की कृपा उनपर सदा बनी रहे तथा उनका घर धन-धान्य एवं सुख-समृद्धि से परिपूर्ण रहे इसी कामना के साथ कोजगरा का त्यौहार मनाया जाता है। यह नवविवाहितों के रागात्मक जीवन के शुभारंभ का त्यौहार है।

☞ **वट सावित्री:** बिहार की महिलायें इस त्यौहार को बड़े ही उल्लास के साथ मनाती है। यह मूलतः स्त्री प्रधान त्यौहार है जिसमें सभी प्रकार की स्त्रियाँ अर्थात् कुमारी, विवाहिता, कुपुत्रा, सुपुत्रा आदि भाग लेती है। इस दिन वट वृक्ष (बरगद का पेड़) की पूजा की जाती हैं। ऐसा माना जाता है कि इस व्रत को करने से अखंड सौभाग्य एवं संतान की प्राप्ति होती हैं। स्कन्द पुराण तथा भविष्योत्तर पुराण के अनुसार ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को यह व्रत करने का विधान है। वहीं निर्णयामृत आदि के अनुसार ज्येष्ठ मास की अमावस्या को व्रत करने की बात कही गई है। वट सावित्री के विषय में यह कथा प्रचलित है कि सती सावित्री (अश्वपति की पुत्री) ने वट वृक्ष के नीचे ही अपने पति सत्यवान (द्युमत्सेन के पुत्र) को तीन बार यमराज से हासिल किया था।

☞ **सरहुल:** यह आदिवासी समुदाय का महत्वपूर्ण त्यौहार है जिसे चैत्र शुक्ल पक्ष तृतीया को मनाया जाता है। मूलतः यह प्रकृति की अराधना से संबंधित पर्व है। यह पर्व कृषि कार्य शुरु करने से पूर्व मनाया जाता है। आम बोल-चाल की भाषा में इसे 'सरना पूजा' भी कहते हैं। सरहुल में प्रचलित है-"नाची से बांची अर्थात् जो नाचेगा वही बचेगा।" इसीलिए सभी आदिवासी आनन्दित होकर नाचते गाते हैं। दो-तीन दिन तक यह पर्व दिन रात चलता रहता है। तीसरे दिन विशेष पूजा के साथ सरना यानि सखुआ के कुँज, फूल आदि को विसर्जित कर दिया जाता है।

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

☞ **दशलक्षण:** यह पर्व जैन मतावलम्बियों का प्रसिद्ध एवं पावन पर्व है जो भाद्रपद शुक्ल पंचमी से लेकर भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशी तक 10 दिनों तक लगातार मनाया जाता है। यह पर्व संयम और आत्मशुद्धि का संदेश देता हैं। इन 10 दिनों में जातक अपने मुख्य दस लक्षणों को जागृत करने की कोशिश करते हैं। जैन धर्मानुसार इन 10 लक्षणों का पालन करने से मनुष्य को इस संसार से मुक्ति मिल सकती है, ये 10 लक्षण है- 1. क्षमा 2. विनम्रता 3. माया का नाश 4. निर्मलता 5. सत्य 6. संयम 7. तप 8. त्याग 9. परिग्रह का निवारण 10. ब्रह्मचर्य। जैन धर्म में इन 10 लक्षणों को पालन करने के लिए साल में तीन बार दस लक्षण पर्व मनाने की बात कही गई है (चैत्र, भाद्रपद और माघ शुक्ल पक्ष पंचमी से चतुर्दशी तक)। दशलक्षण पर्व के समय श्रद्धालु अपनी क्षमतानुसार व्रत-उपवास रख अत्यधिक समय भगवान की पूजा अर्चना करते हैं। इस पर्व में जैन लोग मंदिरों को आकर्षक ढंग से सजाकर जल यात्रा, रथयात्रा और अन्य धर्म प्रभावना का आयोजन करते हैं।

☞ **महावीर जयन्ती:** यह पर्व जैन धर्म के 24वें तीर्थकर भगवान महावीर के जन्म दिवस के रूप में चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को मनाया जाता है। मानव समाज को अन्धकार से प्रकाश की ओर लाने वाले महापुरूष भगवान महावीर का जन्म बिहार की पावन भूमि में हुआ था। इसलिए बिहार में यह पर्व परंपरागत तरीके से हर्षोल्लास और श्रद्धाभक्ति पूर्वक मनाया जाता है। इस पर्व में जैन लोग मंदिरों को आकर्षक ढंग से सजाकर जल यात्रा, रथ यात्रा और अन्य धर्म प्रभावना का आयोजन करते हैं। इस शुभ अवसर पर जैन श्रद्धालु भगवान को फल, चावल, जल, सुगन्धित द्रव्य आदि वस्तुएं अर्पित करते है। जैनों के अन्य पर्व यथा पंचकल्याणक, श्रुतपंचमी, चातुर्मास पर्यूषण, दीपमलिका आदि पर्व को भी बिहार में बड़े ही श्रद्धापूर्वक मनाया जाता हैं।

☞ **बुद्ध जयन्ती:** बिहार में बैसाख मास की पूर्णिमा तिथि को बुद्ध जयन्ती अथवा बुद्ध पूर्णिमा के रूप में श्रद्धा और धूमधाम से मनाया जाता है। इस तिथि को बौद्ध धर्म में विशेष महत्व है क्योंकि इसी दिन भगवान बुद्ध का जन्म हुआ था, उन्हें कैवल्य अर्थात् ज्ञान की प्राप्ति हुई थी तथा इसी दिन उनका महापरिनिर्वाण भी हुआ था। बुद्धपूर्णिमा पूरी दुनिया में बौद्धों का सबसे बड़ा त्यौहार है। यह पर्व न सिर्फ भारत में बल्कि विदेशों यथा, चीन, भूटान, तिब्बत थाईलैण्ड, जापान, कंबोडिया आदि देशों में भी रीति रिवाज के साथ मनाया जाता है। इस दिन बौद्ध मन्दिरों और विहारों में विशेष सजावाट और रोशनी की व्यवस्था की जाती है। बुद्ध जयन्ती के बाद बुद्ध के उपदेश सुनाये/दिये जाते हैं।

☞ **नागपंचमी:** यह पर्व बिहार के मिथिला और अंग क्षेत्र में श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि को मनाया जाता है। वहीं दक्षिण भारत में ऐसा ही पर्व कृष्ण पक्ष की पंचमी को मनाया जाता है। इस दिन सर्प को देवता मानकर उसकी पूजा-अर्चना की जाती है। सर्प अथवा नाग जहां भगवान शिव के गले का हार है, वही भगवान विष्णु की शैय्या भी है। इन्हीं कारणों से हिन्दु धर्म में नाग को विशेष महत्व दिया गया है। इस दिन नाग नागिन को दूध का अभिषेक किया जाता है तथा शिव मंदिरों में विशेष पूजा अर्चना की जाती है। महिलायें अपने घर के चारों ओर की दीवारों पर गाय के गोबर से सीधी लकीर बनाती है और उसमें पीले सरसों के दाने तथा दूब (घास की एक प्रजाति) को रखती है।

☞ **गुरुगोविन्द सिंह जयंती:** यह पर्व सिक्ख धर्म में सबसे बड़ा पर्व माना जाता है। जिसे सिक्खों के दसवें और अन्तिम गुरू, गुरू गोविन्द सिंह की जयन्ती के उपलक्ष्य में मनाया जाता हैं। उनका जन्म 22 दिसम्बर 1666 ई. को पौष शुक्ल सप्तमी तिथि को बिहार के पटना शहर में हुआ था। इस दिन पटना साहिब के हरमन्दिर साहब में विशाल समारोह का आयोजन किया जाता है जिसमें लगभग सभी धर्म एवं पंथ के लोग शामिल होते है। इस अवसर पर सिक्खों के पवित्र ग्रन्थ गुरूग्रन्थ साहिब का पाठ होता है और प्रसाद के रूप में शुद्ध देशी घी का

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

हलवा तथा कड़ा का वितरण किया जाता है। इस शुभ अवसर पर देश-विदेश से बड़ी संख्या में सिक्ख इस आयोजन में भाग लेने के लिए आते है। इस दिन सिक्ख श्रद्धालुओं द्वारा राजधानी पटना में भव्य शोभा यात्रा भी निकाली जाती है।

☞ **ईद:** यह मुसलमानों का सबसे बड़ा एवं सर्वप्रमुख त्यौहार है। इसे ईद-उल-फितर भी कहा जाता है। यह त्यौहार रमजान के पावन महीने के 30 दिनों के रोजा (उपवास) के समाप्त होने के अगले दिन मनाया जाता है। इस दिन लोग नए-नए कपड़ें पहनकर एक-दूसरे के गले मिलते है और एक- दूसरे के घर मीठी सेवईयाँ पीने जाते है। इस त्यौहार के माध्यम से श्रद्धालु मुस्लिम समाज के महीने के सफल समापन के लिए अल्लाह को धन्यवाद देते हैं और अपने द्वारा किए गए गलतियों की माफी मांगते है। वे ईद के दिन नमाजोपरान्त खुतबा पढ़ते है और सामाजिक भाईचारे तथा समरसता का संदेश देते है। बिहार में कुछ हिन्दू धर्म के लोगों द्वारा भी ईद का त्यौहार मुस्लिम रीति-रिवाज के साथ मनाया जाता है। विश्व के अन्य हिस्सों में बसे मुसलमान भी इस त्यौहार को मनाते हैं।

☞ **बकरीद:** इसे ईद उल अजहा भी कहा जाता है जो इस्लामी पंचाग के अन्तिम माह में मनाया जाता है। यह पर्व पैगम्बर इब्राहिम के बलिदान की याद में मनाया जाता है। इस पर्व में बलि देने का विशेष महत्व है। मुसलमान लोग-बकरे या ऊँट की बलि/कुर्बानी देते हैं जिसे आस-पड़ोस में भी बाँटा जाता है। मुसलमानों की पवित्र हज यात्रा इसी समय समाप्त होती है।

☞ **मुहर्रम:** मुहर्रम इस्लामी पंचाग/ कैलेंडर का पहला महीना होता है। इसी दिन से इस्लामी नववर्ष की शुरूआत होती है। यह पंचांग/कैलेंडर चन्द्रमा पर आधारित होता है। इस पर्व को इस्लामी वर्ष में रमजान के बाद सबसे पवित्र महीना समझा जाता है। मुहर्रम का महीना कई मायनों में विशेष है। इसी महीने में पैगम्बर हजरत मुहम्मद साहब को अपना जन्मस्थान मक्का छोड़कर मदीना जाना पड़ा (जिसे हिजरत कहते है), और उनके नवासे हजरत इमाम हुसैन, उनके परिवार के सदस्य एवं अनुयायियों की शहादत हुई थी। इसी शहादत की याद में मुहर्रम पर्व मनाया जाता है। मुहर्रम शब्द 'हराम' या 'हुरमत' से बना है जिसका अर्थ होता है- 'रोका हुआ' या 'निषिद्ध किया गया'। इसका मूल रूप शोक प्रदर्शन करना था जिस पर आज भी बिहार के मुस्लिमों का शिया सम्प्रदाय पालन करता है। इस अवसर पर आलम, ताजिया, जुलजनाह, सपर आदि निकाला जाता है और गरीबों को मुफ्त भोजन कराया जाता है। यह पर्व इस्लाम पर अपना सब कुल न्यौछावर करने का प्रतीक है।

मेला

बिहार अपनी गंभीरता और मस्ती दोनों के लिए संसार भर में प्रसिद्ध है। इसका कारण यह है कि बिहारी संस्कृति परमात्मा और इसके बताए विश्व दोनों पर ही पूरा ध्यान देने की शिक्षा देती है। इसी दृष्टिकोण से हमारे पूर्वजों ने जीवन को ठीक संस्कार देने वाले अनेक छोटे-बड़े कार्यक्रम निश्चित किए थे, जैसे-पर्व, त्यौहार, उत्सव तीर्थ यात्राएँ आदि। मेला भी उन्हीं कार्यक्रमों में से एक है। बिहार को एकता, प्रेम, उत्साह आदि के संस्कार हजारों वर्षो से मिलते आ रहे है। जगह-जगह लगने वाले मेले इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। बिहार में तीन प्रकार के मेले का आयोजन किया जाता है-

1. **धार्मिक मेला:** इस प्रकार के मेले में प्राचीनता और विविधता दोनों का संगम होता है।
2. **आर्थिक मेला:** यह मेला पूर्णत: आर्थिक क्रियाकलापों पर संकेन्द्रित होता है। जैसे-वाहन मेला, लोन मेला, आदि
3. **सरकारी मेला:** यह पूर्णत: सरकारी प्रयास/ अनुदान से लोक कल्याण के उद्देश्य से आयोजित किया जाता है। जैसे रोजगार मेला, पुस्तक मेला, हस्तशिल्प मेला, प्रशिक्षण मेला आदि।

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

बिहार में मेलों का आयोजन प्राय: नदी, सरोवर आदि के किनारे या किसी पर्वत पर अथवा किसी बड़े खुले मैदानों में किया जाता है। मेलों में मनोरंजन के पर्याप्त साधन जैसे चर्खी, झूला, सर्कस, नौटंकी, जादू के खेल आदि की व्यवस्था कर लोगों को मन बहलाया जाता है। बड़े-बूढ़े जवान, बच्चे, स्त्री-पुरूष सभी सज-धजकर बड़े ही उत्सुकता और उत्साह के साथ मेला देखने जाते हैं। बिहार के कुछ प्रमुख मेला निम्नलिखित है:-

☞ **सौराठ सभा:** मिथिलाचंल क्षेत्र में मधुबनी जिला के सौराठ इलाके में 22 बीघा जमीन पर मैथिल ब्राह्मणों (अब दूसरी जाति के लोग भी इसमें भाग ले रहे है) का यह मेला आषाढ़ माह के अन्तिम चरण में 7 से 11 दिनों तक लगता है। इस मेला में कन्याओं के पिता योग्य वर को चुनकर अपने साथ ले जाते हैं। सौराठ सभा में पारंपरिक पंजीकारों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यहाँ जो रिश्ता तय होता है, उसे मान्यता यहाँ के पंजीकार ही देते है। उनके पास वर और कन्या पक्ष की वंशावली होती है। वे दोनो तरफ की सात पीढ़ियों के वैवाहिक रिकॉर्ड को मिलाते हैं। जब इस बात की पुष्टि हो जाती है कि दोनों परिवारों के बीच सात पीढ़ियों में इससे पहले कोई वैवाहिक संबंध नहीं हुआ है तब पंजीकार इस प्रकार की शादी को मान्यता प्रदान करते हैं और इसका लिखित दस्तावेज तैयार करते हैं। शादी तय होने के बाद तत्कालिक विवाह का भी आयोजन किया जाता है। इस मेले को देखने के लिए दूर-दूर से लोग यहाँ आते है।

☞ **वैशाली मेला:** जैन धर्म के 24वें और अन्तिम तीर्थकर महावीर की जन्मभूमि वैशाली में उनके जन्म दिवस के अवसर पर चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को इस मेले का आयोजन किया जाता है जिसमें देश-विदेश से जैन मतावलंबी भाग लेते है। इस मेले में जैन धर्म से संबंधित पाठ्य-पुस्तकें, मूर्तियां आदि मिलते है। प्रमुख जैन आचार्यो द्वारा यहाँ सभा आयोजित कर महावीर के उपदेशों को बताया जाता है।

☞ **सिमरिया मेला:** यह मेला बेगूसराय जिले के बरौनी जंक्शन से 7-8 किमी. दूर गंगा घाट के समीप सिमरिया नामक स्थान पर लगता है। इसे कल्पवास मेला भी कहा जाता है। धार्मिक व आध्यात्मिक पहलू से जुड़े इस मेले में बिहार के विभिन्न जिलों समेत कई राज्यों के अलावा नेपाल से भी हजारों श्रद्धालु यहाँ पहुँचते है। घाटों पर संतों और महात्माओं का जमावड़ा लगा रहता है। मोक्षदायिनी उत्तर वाहिनी सिमरिया गंगा तट पर श्रद्धालु अपने तमाम ऐशो-आराम छोड़कर एक माह तक यहाँ बने पर्णकुटीर में रहते है और रोज प्रात: गंगा में स्नान करते है। एक मान्यतानुसार देश में कुल 12 कुंभ स्थली है। किन्तु वर्तमान में केवल चार स्थानों (हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक) पर ही कुंभ का आयोजन होता है। बाकी के आठ कुंभ स्थली गौण है। सिमरिया घाट उन्हीं गौण स्थली में से एक है। इस मेले को बिहार का अर्द्धकुंभ मेला भी कहा जाता है।

☞ **मंदार मेला:** बिहार के बांका जिले में मंदार पहाड़ी पर प्रत्येक वर्ष इस मेले का आयोजन किया जाता है। मार्कंडेय पुराण, स्कन्द पुराण सहित कई पुराणों के अनुसार समुद्र मंथन के दौरान देवता एवं असुरों ने मद्राचल पर्वत (मंदार पर्वत) का ही मंथन दण्ड के रूप में उपयोग किया था। समुद्र मंथन से प्राप्त अमृत मंदार पर्वत के दक्षिण स्थित पापहारिणी सरोबर में गिरा था। इसी विश्वास के आधार पर लाखों श्रद्धालु यहाँ आकर संक्रान्ति के दिन इस सरोवर में स्नान एवं पूजा-अर्चना करते है। ग्रेनाइट के एक ही चट्टान से बने मंदार पर्वत पर एक दर्जन से अधिक कुंड एवं गुफांए है जिसमें सीता कुंड, शंख कुंड, आकाश गंगाकुंड के अलावे नरसिंह भगवान गुफा, शुक्रदेव मुनी गुफा, राम-झरोखा गुफा के अलावे पर्वत तराई में लखदीपा मंदिर, कामधेनु मंदिर एवं चैतन्य चरण मंदिर मौजूद है। वहीं मंदार पर्वत पर बड़ी संख्या में देवी-देवताओं की प्रतिमाएं रखी हुई है। मकर संक्रान्ति के दिन यहाँ एक विशाल मेले का आयोजन होता है जो 15 दिनों तक चलता है।

Copyright@ Bihar Naman Publishing House

☞ **श्रावणी मेला:** यह मेला बिहार एवं झारखण्ड में संयुक्त रूप से आयोजित किया जाता है। झारखण्ड राज्य के देवघर जिले में बाबा वैद्यनाथधाम स्थित शिवलिंग पर बिहार के भागलपुर जिले के सुल्तानगंज से बहने वाली पावन नदी गंगा के जल से अभिषेक के साथ ही इस मेले की शुरूआत होती है। यह मेला श्रावण माह में शुरू होता है जो एक माह तक चलता है। देवघर का प्रसिद्ध रावणेश्वर ज्योतिर्लिंग, द्वादश ज्योर्तिलिंगों में से एक है जहाँ भक्त की हर मनोकामना पूरी होती है। यहाँ विदेशों से लोग इस शिवलिंग पर जल चढ़ाने आते है।

☞ **सोनपुर का मेला:** बिहार के वैशाली जिले में गंगा व उसकी सहायक नदी गंडक के संगम पर स्थित सोनपुर में प्रतिवर्ष कार्तिक मास की पूर्णिमा को गंगा-स्नान के साथ इस मेले की शुरूआत होती है जो अगले एक माह तक चलता है। यह एशिया का सबसे बड़ा पशु मेला भी है। यहाँ चूहे, कुत्ता, हाथी, घोड़े, गाय आदि जानवरों का व्यापार किया जाता है। यहां पर हरि (विष्णु) व हर (शिव) का प्रसिद्ध मंदिर भी है। अत: इस क्षेत्र को 'हरिहर क्षेत्र' भी कहा जाता है। संभवत: यह विश्वविख्यात मेला मुगलों के शासनकाल से ही आयोजित होता चला आ रहा है।

☞ **मलमास मेला:** यह मेला बिहार के राजगीर में हर तीसरे वर्ष मकर संक्रांति को आयोजित किया जाता है। विद्वानों के अनुसार हर तीसरे वर्ष में अधिक मास होता है। सूर्य के एक राशि से दूसरे राशि में प्रवेश को संक्रांति होना कहा जाता है। सौर मास एवं राशियों की संख्या 12-12 होती है। जब दो पक्षों में संक्रान्ति नहीं होती, तब अधिक मास होता है। यह स्थिति 32 माह 16 दिन में एक बार यानि हर तीसरे वर्ष बनती है। इस अधिक मास को ही मलमास या पुरूषोत्तम मास कहा जाता है। मलमास में एक माह तक (14 दिसम्बर से 14 जनवरी तक) मांगलिक कार्य वर्जित रहते है। मकर संक्रांति के दिन (14 जनवरी) इस अमांगलिक मास का अंत होता है जिसके उपलक्ष्य में राजगीर में एक भव्य मेले का आयोजन होता हैं। ऐसी मान्यता है कि इस दिन 33 करोड़ देवी-देवता राजगीर में निवास करते हैं।

☞ **रोजगार मेला:** राज्य में बढ़ती बेरोजगारी पर अंकुश लगाने के उद्देश्य से सरकारी अथवा निजी संस्था जिला मुख्यालयों में रोजगार मेले का आयोजन करते है। इस मेले में वांछित डिग्री धारकों को उनकी क्षमता एवं कुशलतानुसार राज्य के विभिन्न हिस्सों में रोजगार उपलब्ध कराया जाता है। रोजगार न मिलने की स्थिति में निबंधित युवक/युवतियों को सरकार द्वारा बेरोजगार भत्ता उपलब्ध कराया जाता है। किन्तु निजी कंपनिया इस तरह का भत्ता मुहैया नहीं कराती है।

☞ **सबौर मेला:** यह मुख्यत: कृषि पद्धति से जुड़ा हुआ मेला है जिसका आयोजन सबौर कृषि विश्वविद्यालय (भागलपुर) में किया जाता है। इस मेले में किसानों को उन्नत फसल तकनीक एवं बीजों के विषय में देश के उत्कृष्ट कृषि वैज्ञानिकों द्वारा नि:शुल्क जानकारी उपलब्ध करायी जाती है।

☞ **हस्तशिल्प मेला:** बिहार सरकार के उद्योग विभाग तथा बिहार औद्योगिक क्षेत्र विकास प्राधिकार (बियाडा) द्वारा हस्तकरघा उद्योग को बढ़ावा देने के उद्देश्य से इस मेले का आयोजन किया जाता है। यह मेला बिहार के साथ-साथ दिल्ली में भी अयोजित की जाती है। यह मेला बिहार की संस्कृति, कला, परंपरा, पर्यटन आदि का सूचक है। इस मेले में मिथिला/मधुबनी पेंटिंग, पेपरमेशे आर्ट, जूट, टिकुली आर्ट आदि के स्टॉल लगाये जाते हैं जहां ग्राहकों द्वारा खरीदारी की जाती है।

☞ **लोन मेला:** प्रमुख वाणिज्यिक बैंकों द्वारा कम-से-कम कागजी कार्यवाही के साथ लोगों को लोन देने की सुविधा लोन मेला कहलाता है। भारत सरकार एवं बिहार सरकार का प्रयास लोगों को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाना है। उनकी आत्मनिर्भरता में धन की कमी न हों इसलिए इस प्रकार के लोन मेले का आयोजन किया जाता है। इस मेले में प्राप्त धन राशि का उपयोग कृषि, उपकरण खरीदने, लघु उद्योग स्थापित करने तथा स्टार्ट अप शुरू करने के लिए किया जा सकता है।

❒❒❒

Copyright@ Bihar Naman Publishing House